धृति क्षमा दमोस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 33 • अंक 1 • जनवरी–मार्च 2026

मूल्य रु. 25/–

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 33 जनवरी-मार्च 2026 अंक : 1

भजन

चरन रेनु सिर धरहुं तिहारी।
दीनबन्धु दुखहरन दयानिधि हेतु रहित हितकारी।
गुननिधान करुना की आकर असरन सरन खरारी।।
सील सिन्धु सेवक सुखदायक सरनागत भयहारी।
अति अनाथ के नाथ सुहृद अति निरबल के बल भारी।।
पतित उधारन विपति बिदारन जनरंजन सुभकारी।
आरति हरन दयालु सदा के अघखंडन असुरारी।।
प्रतिपालक तिलोक के स्वामी परम पिता महतारी।
रामसरन कहँलगि गुन गावै अति मतिमंद अनारी।।

भजन संख्या 16 - स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोन: 01334-311821
मोबाइल: 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमना सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइल: 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन-1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेल: rcgupta1018@gmail.com
मोबाइल: 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	भजन – अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।		6
5.	भजन – एक तुम्हीं आधार सद्‌गुरु		6
6.	भजन – ग़म ना करो		6
7.	भजन – जपे जा तू मन से सुबह और शाम		7
8.	भजन – खोलो दया का द्वार		7
9.	भजन – जगत में कोई नहीं तेरा रे		7
10.	गीता विमर्श – धारावाहिक	स्वामी रामानन्द जी	8-9
11.	गुरु वाणी – धारावाहिक		10
12.	Letters to Seekers – धारावाहिक		11-12
13.	भागवत के मोती – धारावाहिक		13
14.	गुरुदेव श्री स्वामी रामानन्द जी का 109वाँ जन्मोत्सव – विवरण व प्रवचन सार		14-17
15.	माँ सुमित्रा जी का जन्मोत्सव – विवरण		17
16.	मेरा परिचय	शिव नारायण सक्सेना	18-20
17.	भगवान् की गोद सबके लिये खाली है	श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार	21-22
18.	सम्पत्ति पर विचार करें	स्वामी कूटस्थानन्द	23-24
19.	ग्रहों का नहीं, अपने ही कर्मों का फल		24
20.	जहाँ भाव, वहाँ पूर्णता	आनन्द त्यागी	25-26
21.	भाग्य का खेल	आचार्य 'अज्ञ'	26
22.	सबसे बड़ा दोष असत्य	श्री विनोबा भावे जी	27-29
23.	मैं कौन हूँ	डॉ. विश्वामित्र जी	29-30
24.	विनम्रता : एक उपादेय गुण	स्वामी श्री रामानन्द सरस्वती	31-32
25.	कड़वा सच : अहंकार नहीं, प्रेम!	नीलम दूबे	33
26.	सात दिव्य शक्तियाँ	अज्ञात	34
27.	मनन करने योग्यः भगवत् कथा - श्रवण का माहात्म्य (वायुपराण)		35
28.	दानदाताओं की सूची		36-37
29.	शोक समाचार		37
30.	दिगोली शिविर-2026 (12 से 16 मार्च 2026) – सूचना		37
31.	श्री गुरुदेव निर्वाण दिवस साधना शिविर-2026 (14 से 21 अप्रैल 2026) – सूचना		38
32.	बाल-साधना शिविर-2026 (30 मई से 3 जून 2026) – सूचना		39
33.	श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		40

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

हमारी साधना के सभी आदरणीय पाठकों को सम्पादक मण्डल का प्रेम भरा अभिनन्दन।

परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि नव वर्ष 2026 में सभी साधक गण द्रुत गति से साधना पथ पर अग्रसर हों। इस वर्ष पत्रिका के इतिहास में एक नया मोड़ आ रहा है जो नीचे दी गई अध्यक्ष जी व सचिव द्वारा हस्ताक्षरित सूचना में परिलक्षित हो जायेगा। उल्लेखनीय है कि समय के साथ परिस्थितियाँ भी बदलती हैं और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालना भी अनिवार्य होता है।

आवश्यक सूचना

आपकी यह पत्रिका पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी महाराज द्वारा सन् 1947 में बीसलपुर मुख्यालय से **'साधना'** नाम से प्रारम्भ की गई थी। कालान्तर में किसी कारणवश इसका नाम बदलकर **'हमारी साधना'** कर दिया गया था। पत्रिका का मुख्य उद्देश्य था गुरुदेव महाराज की शिक्षाओं तथा साधना पद्धति का प्रचार प्रसार। समय के साथ-साथ पत्रिका के रूप, आकार तथा शैली भी बदलती रही।

परिवर्तन संसार का नियम है। परिस्थिति और वातावरण के अनुसार परिवर्तनशील वस्तुएँ बदल जाया करती हैं। ऐसा देखा गया है कि पत्रिका पढ़ने वाले साधक अब बहुत कम रह गये हैं। कारण कि एक तो जिन साधकों ने मूल रूप से पत्रिका की सदस्यता ग्रहण की थी, वे या तो रहे ही नहीं, या उनके पते बदल गये हैं। दूसरा, डाक विभाग भी पत्रिकाओं के सम्बन्ध में ठीक प्रकार से अपना कर्तव्य नहीं निभा रहा। नतीज़ा यह होता है कि साधना धाम हरिद्वार में पत्रिकाओं का जमाव होता रहता है। इस प्रकार पैसे और कागज़, दोनों की ही बर्बादी होती है।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया गया है कि अब पत्रिका की छपाई ही बन्द कर दी जाय। केवल डिजिटल रूप में पत्रिका निकलती रहे जिसे Website पर डाल दिया जाय तथा सम्बनिधत WhatsApp ग्रुपों में पोस्ट कर दिया जाय। इससे प्रति वर्ष लगभग एक लाख रुपये की बचत तो होगी ही, साथ ही कागज़ की बर्बादी भी बचेगी। जो साधकगण चाहें वे इसका प्रिन्ट भी निकलवा सकते हैं।

आशा है प्रबुद्ध साधकगण इस निर्णय से सहमत होंगे।

अध्यक्ष **सचिव/सम्पादक**

अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है

अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।
किस ओर तेरी मंज़िल किस ओर जा रहा है।।
सपने की नींद में ही कहीं रात ढल ना जाए।
पल भर का क्या भरोसा क्या जाने कल न आए।।
गिनती की हैं ये साँसे बिरथा गँवा रहा है।
अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।।
जाएगा जब जहां से कोई न साथ देगा।
इस हाथ जो दिया है उस हाथ जा तू लेगा।।
कर्मों की है ये खेती फल जिसका पा रहा है।
अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।।
ममता के बंधनों ने क्यों आज तुझको घेरा।
सुख के सभी हैं साथी दुःख में न कोई तेरा।।
तेरा ही मोह तुझको कब से रुला रहा है।
अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।।
जब तक है भेद दिल में भगवान् से जुदा है।
देखे जो मन का दर्पण घर में ही खुद खुदा है।।
आनन्द रूप होकर दुःख क्यों तू पा रहा है।
अनमोल तेरा जीवन यूँ ही गँवा रहा है।।

एक तुम्हीं आधार सद्‌गुरु

एक तुम्हीं आधार सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार। (2)
जब तक मिलो न तुम जीवन में।
शांति कहाँ मिल सकती मन में।
खोज फिरा संसार सद्‌गुरु, एक तुम्हीं आधार।
एक तुम्हीं आधार सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार।
कैसा भी हो तैरन हारा,
मिले न जब तक शरण सहारा।
हो न सका उस पार, सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार।
एक तुम्हीं आधार ....
हे प्रभु तुम ही विविध रूपों में।
हमें बचाते भव कूपों से।
ऐसे परम उदार सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार।
एक तुम्हीं आधार ....
छा जाता जग में अंधियारा।
तब पाने प्रकाश की धारा।
आते तेरे द्वार सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार।
एक तुम्हीं आधार ....
हम आये हैं द्वार तुम्हारे।
अब उद्धार करो दुःख हारे।
सुन लो करुण पुकार सद्‌गुरु एक तुम्हीं आधार।
एक तुम्हीं आधार ....

ग़म ना करो

ग़म ना करो गर दुनिया में काँटों का हार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....
ग्रह नक्षत्र सितारे बादल बनकर छाते हैं।
करनी के बीजों पर अपना जल बरसाते हैं।।
सुख दुःख अपने कर्मों का तुमको उपहार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....
बिखर गया गर सपना तो तू उसका ग़म ना कर।
सपनों की इस दुनिया में अपनों का दम ना भर।
एक प्रभु सच है सबको जीवन का सार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....
आशाएँ मन में रखना तो कोई दोष नहीं।
बात न बन पाए तो प्यारे खोना होश नहीं।।
कौन यहाँ ऐसा है जिसको सब संसार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो ....

जपे जा तू मन से सुबह और शाम

जपे जा तू मन से सुबह और शाम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥

1. अहिल्या को जिनकी चरण रज ने तारा।
शिला से बनाया नारी दोबारा॥
हरेंगे वो तेरे भी संकट तमाम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
2. अगर भाव तेरा हो शबरी के जैसा।
तो रख आस्था होगा चमत्कार ऐसा॥
खुद चल के आयेंगे प्रभु तेरे धाम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
3. दो अक्षरों की अनोखी है माया।
जो निशदिन उचारे वही जान पाया॥
प्रभु ने किये हैं सफल सारे काम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
4. दिया राम भक्ति का मन में जगा ले।
प्रभु राम के रंग में अंग अंग रंगा ले॥
नज़र तुझको आयेंगे कण कण में राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
5. जो सिर को झुका कर शरण इनकी आया।
तो हँस के उसे अपने गले से लगाया॥
जो है राम जी का उसी के हैं राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
6. मूरत दया की हैं करुणा के सागर।
ऐसे कृपालु हैं मेरे ये रघुबर॥
उनकी दया के हैं चर्चे तमाम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥
7. राम नाम की एक माला बना ले।
न रख हाथ में अपने हृदय में समा ले॥
आकर बसेंगे तेरे मन में राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥

खोलो दया का द्वार

खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।
कई जन्मों से भटक रहा हूँ मत करना इंकार।
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार॥
1. तू ही मेरा इष्ट है भगवन् मैं हूँ तेरा पुजारी।
तेरा मेरा साथ पुराना तू दाता मैं भिखारी॥
प्यार की भिक्षा डाल दो अब तो खड़ा मैं झोली पसार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार॥
2. जहाँ गया सबने दुत्कारा कोई नहीं है मेरा।
तुम ना मुझे ठुकराना प्रभुजी पतित हूँ फिर भी हूँ तेरा॥
या कह दो पतितों का तुमने किया नहीं उद्धार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार॥
3. नैया भंवर में डूब रही है दूर बहुत है किनारा।
तुम हो दया के सागर प्रभु जी दे दो अब तो सहारा॥
शरण तेरी मैं आन पड़ा अब सुन लो करुण पुकार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार॥
खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।
खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।

❖ ❖ ❖

जगत में कोई नहीं तेरा रे

जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
छोड़ वृथा अभिमान त्याग दे मेरा मेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
काल करम बस जग सराय में कीन्हा डेरा रे।
इस सराय के सभी मुसाफिर रैन बसेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
जिस तन को तू सदा सँवारे साँझ सवेरा रे।
इक दिन मरघट पड़ा भस्म का होकर ढेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
मात पिता भ्राता सुत बांधव नारी चेरा रे।
अन्त न होय सहाय काल जब देवे घेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
जग का सारा भोग सदा कारण दुःख केरा रे।
भज मन हरि का नाम पार हो भव का बेड़ा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

गीता विमर्श
अध्याय 6

(गतांक से आगे)

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥27॥

'इस योगी को, मन के प्रशान्त हो जाने पर, रजोगुण के शान्त हो जाने पर, ब्रह्मभूत तथा निष्पाप होने पर, उत्तम सुख प्राप्त होता है'॥27॥

इस प्रकार से ध्यान करने का भी परिणाम वही होता है जो मेरा चिन्तन (श्लोक 14) करने का होता है।

धीरे-धीरे मन शान्त हो जाता है। प्रशान्त-बिल्कुल शान्त – जिसे मन का मारना कहते हैं। लय होना कहते हैं। रजोगुण शान्त हो जाता है। रजोगुण है चञ्चलता। इन्द्रिय तथा बुद्धिगत चञ्चलता भी समाप्त हो जाती है। इस साधन का स्वाभाविक परिणाम यह है। समय की अपेक्षा है। तोतापुरी जो श्री रामकृष्ण परमहंसदेव के गुरु थे उन्हें 40 वर्ष वन में रह कर साधना करनी पड़ी, परन्तु, रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में ही कुछ मिण्टों में उस अवस्था को प्राप्त कर गये। मन, बुद्धि को सात्विक हो जाना होगा। भले ही वह दशा त्रिगुणातीत है, परन्तु उसमें प्रवेश पाने का रास्ता तो सत्त्वगुण ही है। रजोगुण तथा तमोगुण से तो भीतर निश्चलता नहीं होती, अस्थिरता और जड़ता होती है। सत्त्व के बिना आत्मबोध कैसे हो सकता है?

'ब्रह्मभूत' हो जाता है। ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है। ब्राह्मी-चेतना को लाभ करता है। वही स्थिति है जिसे आत्म-निष्ठा कहते हैं। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग सांख्य तथा योग-दर्शन ने उसी तत्त्व के लिए किया है जिसके लिए वेदान्त ब्रह्म शब्द का प्रयोग करता है। झंझट तो व्यर्थ का है। स्थिति एक ही है।

और 'अकल्मष' हो जाता है। पाप रहित हो जाता है। वास्तव में पाप-पुण्य रहित हो जाता है। सभी संस्कार दग्ध हो जाते हैं, पाप के भी और पुण्य के भी। निर्मल हो जाता है, अनावरण हो जाता है, पारदर्शी शीशे सा हो जाता है योगी।

जब ऐसा हो जाता है तब 'उत्तम सुख को लाभ करता है'। वही सुख जिसका ऊपर वर्णन हुआ है (श्लोक 21)। सिद्धि का भी तभी परिपाक होता है, नवीन चेतना जगती है, उसका कोषों पर प्रभाव होता है, उससे संस्कार का क्षय होता है। प्राथमिक अवस्थाओं में वह चेतना जगती है और निम्नप्रकृति के दबाव के कारण लुप्त हो जाती है। इस चेतना के प्रभाव से ही निम्नप्रकृति का शोधन होता है। फिर-फिर जगती है ऊँची चेतना और फिर-फिर लुप्त होती है, परन्तु अपना असर छोड़ जाती है। क्रमशः स्थिरता आती है। समूचा व्यक्तित्व उस भार को उठाने लायक हो जाता है। फिर वह चेतना स्थायी रूप से बनी रहती है। आत्यन्तिक सुख अन्तिम सीमा है इस परिपाक की।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥28॥

'इस प्रकार से सदा आत्मा की साधना करता हुआ, पाप रहित हुआ योगी आराम से ब्रह्मसंस्पर्श के अत्यन्त सुख का उपभोग करता है'॥28॥

जो साधना का मार्ग ऊपर दिखाया गया है यदि योगी इस पर चलता चला जाता है तो सुख को लाभ करता है। कैसा सुख है वह? अत्यन्त सुख है, जिसमें सुख का अतिशय है, जिससे बढ़कर कोई सुख नहीं (श्लोक 14 ऊपर)।

उस सुख का स्वरूप 'ब्रह्मसंस्पर्श' जिसमें ब्रह्म का संस्पर्श है – ब्रह्म की अनुभूति है, जो आत्मानुभव का सुख है। वही जिसकी ऊपर चर्चा हुई है।

बस, योगी को ऐसे साधन करते जाना होगा। अधीर होकर छोड़ना नहीं होगा। उतावले भी नहीं होना होगा। जैसे रेलगाड़ी में बैठ जाने से वह गाड़ी गन्तव्य स्थान पर ले जाती है, ऐसे ही साधना की गाड़ी लक्ष्य तक पहुँचा देती है। अतः अधीरता के लिए गुंजाइश नहीं है।

आराम से ही वह पहुँच जाता है। कोई कठिनाई नहीं होती; विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। नियमित रूप से किया गया इतना साधन ही काफी है लक्ष्य तक पहुँचने के लिए, यह तात्पर्य है।

इस निश्चयात्मिकता पर ज़ोर देने को ही यह श्लोक है। जैसे बाह्य-जगत् में कारणकार्यभाव से कारण से कार्य का निश्चय हो जाता है, ऐसे ही साधना के जगत् में भी निश्चितता है। इसी से विश्वास जगता है और धैर्य आ सकता है।

आगामी चार श्लोक सिद्ध योगी की अवस्था का, उसके ज्ञान का, आन्तरिक-चेतना का, वर्णन करते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥29॥

'योग के द्वारा युक्त हुई आत्मा वाला, सर्वत्र समदर्शी अपने को सब भूतों में स्थित और सब भूतों को अपने में स्थित, देखता है' ॥29॥

इस साधना से सिद्धि का लाभ करने वाला योगी ही योग युक्तात्मा है। योग – आत्म-संयमयोग, ध्यान का मार्ग। युक्त – आत्मभाव से प्रतिष्ठित। युक्तात्मा – आत्मनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ।

वह **'सर्वत्र समदर्शनः'** हर जगह 'सम' देखने वाला – आत्मा को, ब्रह्म को देखने वाला होता है। सम तो वही है जो सब में सम है, जिसमें ऊँच-नीच नहीं, जो देशकाल से अतीत परमतत्व है। ऐसे का दर्शन क्या होता है? अपने में सभी भूतों को देखता है। अपने शरीर में नहीं, आत्मा में, क्योंकि उसका आपा तो आत्मा ही है। वह उसी में प्रतिष्ठित है। वह महती व्यापक चेतना जो सभी को भीतर बाहर से लपेटे है, जिसमें देशकाल रहते हैं, पर जो उनसे अछूती रहती है, वह सत्ता है, उसमें सभी को देखता है। अपने में सभी को देखता है, और अपने को – उस आत्मतत्त्व को – सभी में व्यापक पाता है। वह तत्त्व तो सभी में ओत-प्रोत है ही। वह ऊँची आत्मा की स्थिति है जो सभी सत्ताओं के पीछे है। वह अछूती है, शान्त है, निर्बाध है और निर्बन्ध है।

यह तो वह चेतना है जो निर्विशेष है। वास्तव में न कोई उसमें है और न वह किसी में है। वह अछूती है। यही तो निर्गुण निर्विशेष भाव है पुरुषोत्तम का, इसी को लेकर तो 9वें अध्याय में विचित्र कथन किया –

'न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्' (श्लोक 5) 'और भूत मुझ में स्थित नहीं, मेरे ईश्वरीय-योग को (तो) देखो'।

वास्तव में वह देशकालातीत सब से असम्बद्ध भाव है पुरुषोत्तम का। ज्ञान के मार्ग का अवलम्बन लेने वाले इसी लक्ष्य को लेकर चलते हैं। यह वास्तव में परा प्रकृति से सम्बद्ध भाव है। यह भी है प्रभु का ही भाव। 'अतः वह भी प्राप्त मुझे ही होते हैं', ऐसा कहा है नवें अध्याय में।

यही चेतना का स्वभाव है जिसे 8वें अध्याय में अध्यात्म कहा है। प्रकृति के संयोग में इसे हम जीव देखते हैं। पुरुषोत्तम तो सभी का समावेश करता हुआ सबसे अतीत, जो एकदम निर्गुण और सगुण, निष्क्रिय और सक्रिय है, जो भक्तों का भगवान् भी है और ज्ञानियों का ब्रह्म भी है, वह है।

जो मैंने ऊपर ब्रह्म तथा आत्मा इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची लिया है उसका भाव स्पष्ट हो गया होगा। सांख्य का 'आत्मा' प्रकृति से न्यारा, अछूता, पुरुष-तत्व है। वह निष्क्रिय है, अलिप्त है, चेतन है, अजन्मा है। वेदान्ती का ब्रह्म भी प्रकृति से न्यारा है, निष्क्रिय है, अलिप्त है, चेतन है, अजन्मा है। बस अन्तर है इतना कि पुरुष अनेक हैं और ब्रह्म एक है। प्रकृति के पार अनेक तत्त्व कैसा? 'आत्मा' शब्द तो उपनिषदों में उसी चेतना का द्योतक है जिसका ऊपर वर्णन किया है। वही ज्ञानमार्ग वालों का ब्रह्म है। इस प्रकार से यह तीनों धारायें आत्मब्रह्म में मिल जाती हैं। एक ही लक्ष्य की ओर इशारा है। पुराने उपनिषदों में तो श्वेताश्वतर ही निराली भाषा बोलता है। अन्यत्र तो इसी स्थिति को लक्ष्य माना गया है।

पुरुषोत्तम इस तत्त्व से अलग नहीं, इस बात को जताने के लिए और भक्ति-धर्म के लिए रास्ता दिखाने के लिए आगामी श्लोक में एक दम नई भाषा बोलते हैं।

(क्रमशः)

गुरु वाणी

आदर्श तथा 'वर्तमान' परिस्थिति में बहुत काल तक एक अन्तर बना रहना स्वाभाविक है। पूर्णत्व की अवस्था में ही दोनों एक हो सकते हैं। जैसे ही हमारा कदम आगे बढ़ता है वैसे ही हमारा आदर्श भी ऊँचा हो जाता है, हो जाना चाहिये। हिमालय की एक चोटी पर चढ़ने पर जो नीचे से सर्वोच्च दिखाई पड़ती थी, दूसरी उससे और ऊँची चोटी दिखाई पड़ने लगती है।

इसी प्रकार की दशा मनुष्य जीवन में होनी नितान्त स्वाभाविक है। अतः आदर्शों पर ध्रुवता की छाप लगाने का काम न करना चाहिये। अपितु वर्तमान का सदैव अतिक्रमण करने को उद्यत रहना आवश्यक है। यही जीवन में प्रगतिशीलता है। हृदय में, मस्तिष्क में, आत्मा में तथा तन में, समाज तथा देश - **सभी क्षेत्रों में व्यक्ति को आगे बढ़ना सीखना है।** स्थिरता केवल मात्र दिशा की ही हो सकती है, इससे अधिक स्थिरता निर्जीवता होती है। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

एक अवस्था तक अभिमान व्यक्ति में विकास के लिये आवश्यक होता है। स्वाभिमान के बिना प्रायः लोगों के लिये काम बेगार हो जाता है। परन्तु व्यक्ति आगे बढ़ते बढ़ते एक स्थिति को प्राप्त कर सकता है जब स्वाभिमान के अभाव में भी काम बेगार नहीं होता। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

सेवा न केवल युगधर्म है, यह तो विकास का नियम ही है। इसके बिना भी व्यक्ति सेवा करता है परन्तु समाज का काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति सेवा करता है - अध्यापक भी और बनिया भी, यदि वह अपने काम को ठीक करता है तो। इसमें क्या सन्देह? एक लेखक भी समाज की सेवा करता है और मेरी समझ में एक जज और जेलर भी। सेवा इतनी व्यापक वस्तु है। इससे हमारे स्वधर्म के लिये हमेशा गुंजाइश है। राजनैतिक क्षेत्र में भी समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से कुछ कर सकता है। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

क्रिया मात्र, शक्ति का आनन्दमय विलास हो जाता है। वह कर्म की विशेषता पर निर्भर नहीं, वह तो व्यक्ति की विशेषता पर निर्भर है। पूर्ण अवस्था में कर्म सहज होता है जैसे फूल का खुशबू देना अथवा सूर्य का प्रकाश देना, इसमें सन्देह नहीं। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

अभिमान से डरियेगा नहीं। बस इसे पहिचान लीजियेगा। जहाँ पर यह प्रकट होता है वहाँ चोर की भाँति न हो, आपसे छिपा न रहे। (पत्र 88)

❖ ❖ ❖

ज्यों ही आप अपने को भागवती शक्ति के आगे खोलते चले जायेंगे, उसको अपने में क्रिया करने देंगे, आप स्वर्ण के सदृश चमकीले, हिम के समान शुद्ध-सरल तथा स्फटिक की भाँति उज्ज्वल होते चले जायेंगे, विश्वास जानियेगा। (पत्र 88)

Letters to Seekers

Letter No. 29 : Shri Ram : Chandausi.

27.01.1945

My dear Sharmaji,

If you leave a thing upto me, you leave a thing upto me in fact. The decision about Shri Swamiji's visit was left to me by you and I took it. I did not request him at all, why? I should say, so I 'felt' from within, to be plain. At present I cannot say what his further programme is, and I too shall have to consider my further programme, and see if it is possible to adjust it. If you are very keen as you seem to be, I shall consult him, and see whether it is possible for me to accompany him, and I shall let you know. We meet at Bareilly on the 1st Shri Swamiji and I.

Now about your questions. They are so nice, but they seem to have come up to the wrong man. You know my attitude, which I have tried to make clear more than once. Now the answers.

1. This is all one Reality. The very word with the capital 'R' excludes the idea of a second, to my mind.

2. By spiritual experience, we can note nothing definite. If you say the 'ultimate experience', I should say yes, (with the reservation that 'experience above a certain spiritual level' is denoted by the phrase 'ultimate experience'). For as I have already said to you, there is a higher and a higher and a higher – it is evolution. The limits are incomprehensive. So it seems to me.

The difference between Budha and Krishna is very easy to explain. The comprehension and expression must always be through a mind and this necessarily differs in all individuals. All have had different experiences and a different line of evolution.

3. I may add that Raman Maharishi says that the physical may become intangible. It may be possible, but neither Shri Aurobindo nor Raman Maharishi seem to have worked out this phase. Let us go ahead and see to it.

Considering from a higher point of view, the working out of such a possibility, must involve practically impossible conditions at the present stage of evolution. Perhaps you do not know that Shri Aurobindo had his leg fractured[2] – he slipped from the staircase and has upto the present (5 years ago) to be brought for darshan in chair. Raman also, you know, is fast aging.

In fact this part of Shri Aurobindo's philosophy is the least important, to me – it is rather going too far for the present.

I can say that the descent sets into motion the pranic forces which gradually wash the body clean and fill it with new vitality. Aging is considered even by the modern scientist to be merely a mental habit. The moment we can drive it away – we can rid ourselves of this consciousness which has permeated our mental structure, we shall cease to grow old. The cells in the body are ever being born fresh and young. The ancient Siddhas, (of one we hear in the life-time of saint Jnaneshwar) managed to live upto hundreds of years.[3] To me such a thing looks like a self imposed imprisonment.

You ask my upto date experience of the Reality. The question is difficult, partly because it is vague and partly it involves intellectual difficulties. All experience beginning with the physical, regard as experience of the Reality. There is an ever present consciousness of a stillness, Peace that pervades all, and I experience a strange sort of oneness with all. In action I realize that it is power, and dazzling light of consciousness, and a joy which is more serene – felicity than a joy. A strange balance one feels within and without.

I enclose a copy of the annual prayer – 1945 of the Mother – Shri Aurobindo Ashrama. Dr. Indar Sen gave it to me at Delhi. We were in touch.

Do you know someone who has been contributing to the Arya – the Journal of Aurobindo Ashram in the teens of this century?

I shall be at Bareilly on the 1st of February.

With loves,

Yours in the Lord,

Ramanand

1. All experience in fact, is spiritual experience.
2. Source of my information is my Gurudeva who paid a visit to Sri Aurobindo Ashrama and learnt it from an inmate of the Ashrama.
3. Who knows, there may be some alive.

❖ ❖ ❖

अवगुणों को भूलने और गुणों को स्मरण करने से वातावरण बदलता है। क्या हममें अहं नहीं है? क्या हममें स्वार्थ नहीं है? यदि न हो तो दूसरों की बातें बुरी न लगें।

– रामानन्द

भागवत के मोती

अप्रैल 2023 अंक से पत्रिका में श्रीमद्भागवत के चुने हुए सन्देश छपने आरम्भ हुए हैं। इस अंक में प्रस्तुत है इन सन्देशों की बारहवीं कड़ी –

59. जिसकी मृत्यु सत्त्वगुणों की वृद्धि के समय होती है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है; जिसकी रजोगुण की वृद्धि के समय होती है, उसे मनुष्यलोक मिलता है और जो तमोगुण की वृद्धि के समय मरता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। परन्तु जो पुरुष त्रिगुणातीत – जीवन्मुक्त हो गये हैं, उन्हें मेरी प्राप्ति होती है।

– भागवत 11.25.22

60. जब अपने धर्म का आचरण मुझे समर्पित करके अथवा निष्काम भाव से किया जाता है तब वह सात्त्विक होता है। जिस कर्म के अनुष्ठान में किसी फल की कामना रहती है, वह राजसिक होता है और जिस कर्म में किसी को सताने अथवा दिखाने आदि का भाव रहता है वह तामसिक होता है।

– भागवत 11.25.23

61. जीव को जितनी भी योनियाँ अथवा गतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब उनके गुणों और कर्मों के अनुसार ही होती हैं। सब के सब गुण चित्त से ही सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये जीव उन्हें अनायास ही जीत सकता है। जो जीव उन पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह भक्तियोग के द्वारा मुझ में ही परिनिष्ठित हो जाता है और अन्ततः मेरा वास्तविक स्वरूप, जिसे मोक्ष भी कहते हैं, प्राप्त कर लेता है।

– भागवत 11.25.32

62. विचारशील पुरुष को चाहिए कि बड़ी सावधानी से सत्त्वगुण के सेवन से रजोगुण और तमोगुण को जीत ले, इन्द्रियों को वश में कर ले और मेरे स्वरूप को समझ कर मेरे भजन में लग जाये। आसक्ति को लेशमात्र भी न रहने दे।

– भागवत 11.25.34

63. यह मनुष्य शरीर मेरे स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति का – मेरी प्राप्ति का मुख्य साधन है। इसे पाकर जो मनुष्य सच्चे प्रेम से मेरी भक्ति करता है, वह अन्तःकरण में स्थित मुझ आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

– भागवत 11.26.1

गुरुदेव श्री स्वामी रामानन्द जी का 109वाँ जन्मोत्सव

जन्म महोत्सव का शुभारम्भ 15 दिसम्बर 2025 के सायंकाल के सत्र से हुआ जिसमें सायं 6:00 बजे के सामूहिक जाप के पश्चात दिनांक 16 दिसम्बर प्रात: 7:00 बजे तक अखण्ड जाप चला। उसके पश्चात साधना धाम हरिद्वार के प्रांगण में प्रात: 10:00 बजे से 12:00 बजे तक विधिवत हवन किया गया जिसमें लगभग 50 साधक भाई-बहन उपस्थित रहे। तदोपरान्त ब्राह्मण-भोज कराया गया। दोपहर 2:00 बजे से 4:00 बजे तक साधना मन्दिर में केक काटकर नृत्य एवं भजनों का आनन्द उठाया गया। सायं 6:00 बजे से 9:00 बजे तक साधना धाम के प्रांगण में टैण्ट लगाकर भजन सन्ध्या का आयोजन किया गया। उसके पश्चात साधकों तथा आमन्त्रित अतिथियों ने गंगा घाट पर प्रीतिभोज का आनन्द लिया।

साधना धाम मन्दिर को सुन्दर फूलों से तथा प्रांगण को रंग-बिरंगी लाइटों से सुसज्जित किया गया। अन्य स्थानों पर भी वहाँ रहने वाले साधकों द्वारा जन्म दिवस महोत्सव मनाया गया।

प्रवचन सार

श्री रमा शंकर कौशिक जी

हम सभी हरिद्वार की पावन भूमि पर पूज्य गुरुदेव के जन्म दिवस शिविर में उपस्थित हैं। यह हम सभी का सौभाग्य है।

अध्यात्म मनुष्य को परमात्मा से मिलाने का उपक्रम है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता कर्म और ज्ञान का संगम है। हम सभी कर्म करने के लिये स्वतन्त्र हैं परन्तु फल तो भगवान् के हाथ में है। गीता भगवान् ने अर्जुन को युद्ध के मैदान में सुनाई थी। प्रथम अध्याय में संजय और धृतराष्ट्र का संवाद है। संजय बताते हैं – दुर्योधन कहता है – 'भीष्म पितामह द्वारा व्यवस्थित हमारी सेना चारों ओर से सुरक्षित है।' यह सुनकर धृतराष्ट्र को ख़ुशी हुई। किसी भी युद्ध को जीतने के लिये शत्रु कितना बलवान है, यह जानना ज़रूरी है। इसी तरह हमें भी अपने जीवन का मूल्यांकन करना है कि हमारे साथ प्रभु और गुरुदेव की कितनी कृपा है, तभी हम जीवन में सफल हो पायेंगे।

अर्जुन ने जब अपने सगे सम्बन्धियों को युद्धक्षेत्र में देखा तो अर्जुन को मोह हो गया और उसने युद्ध न करने की निश्चय किया। वह किंकर्तव्यमूढ़ हो गया और उसने भगवान् कृष्ण को अपने गुरु रूप में स्वीकार करके उनसे मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की। अध्याय 2 में भगवान् ने अर्जुन को समझाया कि आत्मा कभी मरती नहीं, शरीर का ही बदलाव होता है। तू तो केवल अपना कर्तव्य कर्म कर और फल की इच्छा मत कर।

वहीं पर भगवान् ने 18 अध्यायों में गीता का सम्पूर्ण ज्ञान अर्जुन को दिया। इसी प्रकार हमें भी अपने सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म को भगवद्‌भाव से करना चाहिए और फल की इच्छा से नहीं। यदि ईश्वर पर पूर्ण विश्वास हो तो भगवान् खम्भे से भी प्रकट हो जाते हैं। इसीलिये हमें भी ईश्वर पर पूर्ण विश्वास और आस्था रखनी चाहिए। महाभारत का युद्ध यही सन्देश देता है कि पापी और अत्याचारी व्यक्तियों का वध ज़रूरी है। इसमें पाप नहीं लगता और धर्म की स्थापना के लिये भी यह आवश्यक है।

श्री सुभाष ग्रोवर जी

भगवान् की प्राप्ति के लिये श्रद्धा और विश्वास ज़रूरी है। परमात्मा असीम है। मनुष्य जीवन का

उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। क्योंकि –

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा॥

हमें परमात्मा की प्राप्ति के लिये प्रबल इच्छा और सद्गुरु का सान्निध्य ज़रूरी है। सांसारिक सुखों के लिये अनेक प्रयास करने पड़ते हैं किन्तु परमात्मा की प्राप्ति के लिये इच्छा और थोड़ा ही प्रयास करना पड़ता है। गीता के अध्याय 18 के श्लोक 61 में भगवान् ने कहा है –

शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। अध्याय 5 श्लोक 18 में बताया गया है –

ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते हैं। परमात्मा सर्वत्र हैं, सभी में हैं, पूरे संसार में व्याप्त हैं, हमें तो बस उसको पहचानना है। अध्याय 13 के श्लोक 2 में भगवान् ने कहा है –

सम्पूर्ण क्षेत्रों में मैं हूँ। वो चेतना जो प्राणिमात्र की उच्चतम चेतना है वह परमात्मा ही है। सभी के हृदय में परमात्मा विराजमान हैं, इसीलिये हमें किसी के साथ बुराई नहीं करनी है। जब मनुष्य बुराई से रहित हो जाता है तभी परमात्मा की प्राप्ति होती है। गीता के अध्याय 2 श्लोक 16 में कहा गया है – असत्य वस्तु नाशवान है, केवल अविनाशी भगवान् ही सत्य है; इसीलिये हमें सत्य का साथ करना है और निष्काम भाव से सभी कर्म करने हैं।

बहन कान्ति सिंह जी

पूज्य गुरुदेव भगवान् की साधना अवरोह पथ की साधना है। गुरुदेव भगवान् ने हम सभी को भक्ति मिश्रित कर्मयोग की साधना बताई है और गीता के अध्याय 12 के श्लोक 13 से 20 तक का नित्य पाठ भी बताया है क्योंकि इन सभी श्लोकों में सिद्ध भक्त के लक्षण बताये गये हैं। इन सभी श्लोकों का अर्थ बहन जी ने खोलकर समझाया।

अपने दूसरे प्रवचन में बहन जी ने बताया कि पूज्य गुरुदेव महाराज कहा करते थे कि गीता साधना का ग्रन्थ है। गीता जीवन की समस्याओं का हल है। यह अन्यायी से घृणा करना नहीं सिखाता परन्तु उसके अत्याचार को मौन भाव से स्वीकार करना भी नहीं सिखाता। घृणा न करते हुए अन्यायी को दण्ड देना सिखाता है। गीता के अध्याय 4 के श्लोक 22 में बताया गया है – जो सहज में प्राप्त हुए से सन्तुष्ट है, द्वन्द्वों से परे है, मत्सर रहित है, सिद्धि तथा असिद्धि में सम रहता है, वह कर्म करके भी नहीं बंधता।

गुरुदेव भगवान् बताते हैं – हम सभी के जीवन में सुख भी होता है और दुःख भी, लाभ भी होता है और हानि भी, कभी मान होता है, कभी अपमान; कभी अपनी इच्छा के अनुरूप खाने पहनने को मिलता है और कभी इच्छा के विपरीत। परन्तु भगवान् का भक्त तो सभी परिस्थितियों को भगवान् की देन समझकर स्वीकार करता है और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे हो जाता है। द्वंद्वातीत होना भीतर की समता की पहचान है। विमत्सर होने का अर्थ है दूसरे की उन्नति देखकर जलन अथवा दाह का न होना। जो सिद्धि और असिद्धि में सम है, ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी बन्धन में नहीं बंधता।

अतः हम सभी को अपने गुरुदेव की बताई हुई साधना के पथ पर चलते हुए भगवान् का भक्त बनने का प्रयास करना है, सतत नाम स्मरण का अभ्यास करना है।

बहन अरुणा पाण्डेय जी

गुरु जी का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। जब हमारे जीवन में गुरु का प्रवेश होता है तो हमें निम्न स्तर से उठाकर विकास के उच्चतम शिखर तक

पहुँचा देते हैं। हम कितना भी सुन लें, यदि उसका चिन्तन और मनन नहीं करते तो हमारा विकास तेजी से नहीं हो पाता। हम सभी के जीवन में अनेकों समस्यायें होती हैं और उनका समाधान गुरु की शरण में आने पर स्वत: ही हो जाता है। गुरु के वचनों पर विश्वास करने से जीवन बदलता चला जाता है।

हम सभी इन्द्रियों का सुख चाहते हैं। जो मूढ़ व्यक्ति होते हैं वो भी भगवान् के सान्निध्य में आने पर धीरे-धीरे विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते चले जायेंगे। भगवान् की शरण आये बिना व्यक्ति को सच्चा सुख और शान्ति नहीं मिल पाती। सन्तों की बातें सुननी और गुननी चाहिए। यह जीवन नश्वर है। यह शरीर हमें कुछ दिनों के लिये मिला है, अत: इसका लाभ उठायें और निरन्तर भगवान् के नाम का चिन्तन और मनन करें। अपनी सभी आकांक्षाओं और मान्यताओं को प्रभु के चरणों में समर्पित कर दें।

श्री अजय अग्रवाल जी

सबसे पहले ईश्वर की वन्दना करते हैं और उनको जानने का प्रयास करते है। ईश्वर पूर्ण हैं और हम सभी ईश्वर की भक्ति चाहते हैं।

सन्त तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कहा है –

बार बार बर मागहुं हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

हमारे जीवन में अनेकों लोग मिलते हैं। किसी का व्यवहार हमारे प्रति अच्छा होता है और किसी का व्यवहार हमारे मन के अनुकूल नहीं होता। परन्तु हमारा किसी के साथ वैर भाव नहीं होना चाहिए क्योंकि सभी में परमात्मा विद्यमान हैं। गृहस्थ में रहते हुए भी हम परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं।

श्री विष्णु कुमार गोयल जी

गुरुदेव भगवान् ने पत्र पियूष में बताया है कि लोग ताना मारते हैं और हम दुखी हो जाते हैं। लेकिन क्या हम जानते हैं कि सच में वो हमें दुखी करना चाहते हैं। गलतियाँ हमसे भी हो जाती हैं और दूसरों से भी हो जाती हैं। यह भी सम्भव है कि हमने जो व्यवहार दूसरे के प्रति किया हो उसमें द्वेष की प्रधानता हो या अनजाने में ही हमारे द्वारा उसको कष्ट मिला हो। ऐसी अनेकों बातें सम्भव हैं।

अत: हमें विचार करने की आवश्यकता है। हमें अपने विचारों को अच्छा बनाना चाहिए और सभी से सच्चाई पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। विचारों में रचनात्मक और विध्वंसात्मक – दोनों ही शक्ति होती है। हमारा व्यवहार सभी के प्रति प्रेम से भरा हो। दूसरों को बदलने की बजाय हमें अपने विकारों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

अध्याय 3 के श्लोक 9 में भगवान कहते हैं कि यज्ञ के निमित्त किये गये कर्म के अतिरिक्त सभी कर्म बन्धन के कारण होते हैं।

सामान्यत: अग्नि को प्रज्ज्वलित करके देवताओं का आवाहन करते हैं और हवन सामग्री के द्वारा उनको पुष्ट करते हैं। यहाँ भगवान् ने समझाया है कि सामग्री के स्थान पर अपने कर्मों को हवन कर दो अर्थात् भगवान् को अर्पित कर दो जो बन्धन का कारण हैं। जब कर्मों का बन्धन नहीं होगा तो मुक्ति स्वत: ही हो जायेगी।

मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, सभी एक दूसरे पर आश्रित हैं। उदाहरण के तौर पर मकान बनाने में अनेकों लोगों का योगदान होता है। हम सभी प्रकृति के ऋणी हैं। इस शरीर को चलाने के लिये भी हम एक दूसरे पर आश्रित हैं। हम सभी इस विशाल शृंखला की एक नन्हीं सी कड़ी हैं।

अध्याय 3 के श्लोक 10 में भगवान् ने बताया है कि ब्रह्मा जी ने जब सारी सृष्टि बनाई तभी से यज्ञ की रचना हुई। यज्ञ का स्वरूप है बलिदान और आत्मदान। वनस्पति जगत में और पशुओं में यह आत्मदान स्वत: ही होता है परन्तु मनुष्यों में

यह सोच-समझ कर होता है। अध्याय 3 के श्लोक संख्या 26 में भगवान् ने बताया है कि हे अर्जुन! कर्म में आसक्त हुए मूर्ख लोग जिस प्रकार से कर्म करते हैं, समझदार व्यक्ति भी लोक-संग्रह करने की इच्छा से अनासक्त होकर उसी प्रकार से कर्म करें। समझदार व्यक्ति के कर्म लोक-संग्रह की दृष्टि को रखकर होते हैं, व्यक्तिगत भावना से नहीं। जिस प्रकार अध्यापक को अपने लिये प्रथम और द्वितीय कक्षा की पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु वह दूसरों को पढ़ाने के लिये स्वयं पढता है, सिखाता है और बार-बार पढ़कर सुनाता है।

यज्ञ की भावना से ओत-प्रोत हो जाने से कर्म-बन्धन नहीं प्रतीत होता, दूसरों का हित स्वभाव ही हो जाता है। योग्य गुरु का काम है स्थिति को जानकर ही उसके अनुकूल आदेश करना।

हमारी साधना में संयम का अभिमान नहीं है। हमारे गुरुदेव ने सभी विकारों का रूपान्तरण बताया है। हम जितना प्रभु के समीप होने का प्रयास करेंगे, माँ महाशक्ति स्वयं ही सभी विकारों का रूपान्तरण करती चली जायेगी। स्त्री-दर्शन न करने से काम का रूपान्तरण नहीं, अपितु उसका दमन हो जाता है और समय आने पर पुनः वो वृत्तियाँ जागृत हो सकती हैं। हमारी चेतना के जागृत होने पर काम भगवत-काम में परिवर्तित हो जाता है।

किसी भी दोष को दबाने से वो दूर नहीं हो जाता; फिर से उभड़ आने की सम्भावना रहती है। संयम के लिये संयम नहीं करना है, संयम तो सहज और स्वाभाविक होना चाहिए।

श्री राजेन्द्र भांबरी जी

पत्र-पीयूष की पत्र संख्या 59 में गुरु महाराज ने बताया है कि अपने को दुखी या सुखी करना हमारे स्वयं के हाथ में है। उन्ही शब्दों को यदि हम सुने-अनसुने कर देते हैं तो हमें दुःख नहीं होता और यदि हम महत्व देते हैं तो हमारे अन्दर व्याकुलता होती है।

किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसको पूरी तरह से, ठीक से जाने बिना नहीं करना चाहिए। दूसरे के सुख-दुःख को उनके विचारों को समझने का सहानुभूति-पूर्वक प्रयत्न करें।

❖ ❖ ❖

माँ सुमित्रा जी का जन्मोत्सव

प्रत्येक मास की 7 तारीख को माँ सुमित्रा की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में साधना धाम हरिद्वार में अखण्ड जाप व प्रसाद वितरण किया जाता है।

दिनांक 7 दिसम्बर 2025 को इस उपलक्ष्य में 7 दिवसीय अखण्ड जाप आरम्भ किया गया जिसकी पूर्ति 14 दिसम्बर को उनके निर्वाण दिवस के अवसर पर 11 ब्राह्मणियों को भोजन तथा दक्षिणा के साथ की गई। इसके अतिरिक्त दिनांक 14 दिसम्बर को रामायण का अखण्ड जाप आरम्भ किया गया जिसकी पूर्ति 15 दिसम्बर को की गई।

मेरा परिचय

यह सत्य ही है कि जब माँ भगवती की कृपा होती है तो समस्यायें अपना समाधान स्वयं ढूँढ निकालती हैं। सफलता स्वयं आकर चरण चूमने लगती हैं और मंजिल स्वयं राही तक चली आती हैं। जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसी घटनायें घटित हो जाती हैं कि जिनकी न तो हम कभी कल्पना ही कर पाते हैं और न आशा ही, किन्तु जब वास्तविकता का भान होता है तो विश्वास करना ही पड़ता है। मेरे जीवन की एक ऐसी ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना है पूज्य स्वामी जी से प्रथम परिचय!

लगभग दिसम्बर सन् 1942 की बात है। मैं उस समय जिला पीलीभीत में डिप्टी कलक्टर था। एक दिन भाई राय बहादुर जी, श्री श्याम सुन्दर सहाय जी मिलने आये। बातों-बातों में कहने लगे कि यहाँ पूज्य स्वामी रामानन्द जी महाराज आये हुए हैं और श्री राम बहादुर जी के यहाँ राम कुटी में ठहरे हैं। उन्होंने जो कुछ स्वामी जी के विषय में बताया वह इतना प्रभावशाली जान पड़ा कि मैं उनके दर्शनों के लिये लालायित हो उठा और श्याम सुन्दर सहाय जी के साथ राम कुटी की ओर अनायास ही चल पड़ा। मैंने स्वामी जी के दर्शन किये और करता ही रह गया। उनके सौम्य मुख-मण्डल को एक आलौकिक दिव्य आलोक दैदीप्यमान किये हुए था। उनके आकर्षक मनोहर व्याक्तित्व में कुछ ऐसा तेज था, कुछ ऐसा ओज था और कुछ ऐसा अनोखा प्रभाव था कि कुछ ही क्षण बाद मैंने अनुभव किया कि मेरा मस्तक स्वयं ही नत था! वे ज्योतिर्मय थे और मैं उस ज्योति की खोज में भटकता हुआ राही! मुझे लगा कि मेरी मंज़िल मुझे स्वयं ही मिल गयी है।

एक बार दर्शन करने से तृप्ति नही हुई अत: दो तीन बार दर्शनों के निमित्त वहाँ गया। उसके पश्चात् सुना उनका भाषण – सरिता के समान निर्मल, सतत् प्रवाह सा प्रवाहित, शान्त और गम्भीर उनमें मेघमालाओं की गर्जना नहीं थी, झंकृत वीणा के स्वरों की मधुरता थी। पाण्डित्य का झूठा प्रदर्शन नहीं था, ज्ञान के आलोक को फैला कर अज्ञानता के तम को दूर करने का अनूठा प्रयास था। माया-चक्र में फँसे हुए मानवों के प्रति व्यंग की घृणा नहीं थी वरन् उनके प्रति थी सहानुभूति, संवेदना, दया और सहायता करने की नि:स्वार्थ भावना! उनके इस देवोपम स्वरूप के समक्ष मेरे हृदय ने स्वयं ही समर्पण कर दिया। श्री श्याम सुन्दर सहाय जी ने मेरा परिचय पूज्य स्वामी जी से कराया और दयामयी, ममतामयी और कृपामयी माँ की भाँति उन्होंने मुझे अपना लिया सदा-सदा के लिये अपना बना लिया। उस क्षण से लेकर आज तक उनकी कृपा दृष्टि सदैव मेरे ऊपर रही। जब कोई विषम समस्या मेरे समक्ष आई उसका समाधान उन्होंने किया। जब कभी दु:ख द्वन्दों की चोट से मेरा विश्वास डगमगाया, उन्होंने उस महाशक्ति में मेरी आस्था दृढ़ की। और जब कभी मुझे पथ अन्धकारमय प्रतीत हुआ वे ज्योति बन कर छा गये। मेरी चिन्ताओं का भार जैसे स्वयं उन्होंने ले लिया हो। और अब भी मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि भौतिक रूप में न सही किन्तु आध्यात्मिक रूप में तो अवश्य ही, सदा की भाँति वे निरन्तर मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे!

पूज्य स्वामी जी के विषय में जब भी सोचता हूँ तो सोचता ही रह जाता हूँ। सोचता हूँ कि उनकी समस्त विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या कर सकूँ तो कितना अच्छा हो। किन्तु उनका चरित्र तो उस गहन, अथाह, सीमा रहित सागर की भाँति है जिसमें उनकी विशेषतायें, उनके गुण अक्षय मुक्ताओं के भण्डार के समान भरे पड़े हैं। बुद्धि जितनी गहराई में जा पाती है, उतने ही मुक्ता बटोर लाती है। किन्तु उन सबकी एक सुव्यवस्थित व्याख्या करना, उन सबको एकाकी समक्ष रख देना दुष्कर ही नहीं असम्भव सा प्रतीत होता है। फिर भी मैं तो उन्हें एक सिद्ध पुरुष मानता हूँ। वे एक ऐसे व्यक्ति थे कि जिनमें वे सब लक्षण वर्तमान थे जो कि एक स्थित-प्रज्ञ के श्रीमद्भगवत

गीता के दूसरे अध्याय के अन्त में बताये गये हैं। **किन्तु उनके जिन गुणों ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वे हैं – उनका आनन्दमय स्वरूप, महाशक्ति पर अखण्ड आस्था रखना और ऐसा ही भाव दूसरों में जाग्रत करना, उदारता, सहानुभूति, संवेदना, दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझना और उसका यथासम्भव समाधान करना।**

उनकी वह विशेषता जिसने सभी को मन्त्र मुग्ध कर रखा था – वह थी उनके मुख-मण्डल पर सदैव विराजने वाली आनन्द-आभा! जब भी मैंने उन्हें देखा सदा प्रसन्न ही पाया हँसते हुए, मुस्कुराते हुए, किन्तु कभी मलिन-मुख या खिन्न चित्त नहीं देखा। बड़ी से बड़ी समस्याओं का समाधान उन्होंने हँसते-हँसते कर दिया और कठिन से कठिन दुःखों को भी उन्होंने हँस-हँस कर सुख में परिवर्तित कर दिया। उनके मधुर हास्य से हृदय खिल उठता था – वातावरण सुरभित हो उठता था। खाना खाने के बाद यह उनका नियम सा था कि वे हँसाते आरै सबकी हँसी में स्वयं सम्मिलित होते थे। कितना ही गम्भीर वातावरण हो अपने मुक्त हास से निर्मल और मधुरिम बना देते थे।

किन्तु उनकी सबसे अनुपम विशेषता थी भगवान् पर अटूट विश्वास! माँ के ऊपर उनका ऐसा विश्वास था कि संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसे हिला नहीं सकती थी। यदि कितनी ही बड़ी से बड़ी परेशानी हो, कैसी तकलीफ हो वे सदा यही कहते थे – ''यह भी हो लेने दो।'' सबसे बड़ा भय होता है मृत्यु का किन्तु आत्मा तो अजर है, अमर है, अतः हम क्यों व्यर्थ चिन्ता का भार वहन करें। उनका कहना था कि जब तक जीना है हँस-हँस कर जिओ। और एक दिन मरना तो है ही अतः इसमें विचलित होने की क्या बात है? अहंकारपूर्ण साधुओं की भाँति उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि यह **ऐसा होकर ही रहेगा** किन्तु कभी-कभी इसका आभास अवश्य दे देते थे कि **ऐसा कार्य हो जायेगा।** उनके शब्दों से कितनी सान्त्वना मिलती थी, माँ में कितना अविचल विश्वास हो जाता था! ऐसी कितनी ही घटनायें नेत्रों के समक्ष घूम जाती हैं कि जब कभी मेरे साहस और धैर्य का बाँध टूटने लगा तब उन्होंने आकर मुझे बचाया, सर्वशक्तिमयी माँ में आस्था दृढ़ की। किन्तु उन सब घटनाओं में से एक घटना का मेरे जीवन में मुख्य स्थान है।

सन् 1945 में, मैं बीमार पड़ा और सन् 1946 तक मेरी अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई। जीने की कोई आशा न रही। एक दो बार तो नब्ज़ भी छूट गई। गृहस्थी का नन्हा सा पौधा, छोटे-छोटे बच्चे। एक बार सब सोचकर हृदय काँप उठता था। डाक्टरों ने पहाड़ों पर जाने को बताया। कैसे जा पाऊँगा वहाँ तक? पहुँच भी पाऊँगा या नहीं? यही सब सोच कर बार-बार साहस खो बैठता था। किन्तु उसी समय आ गये पूज्य गुरुदेव और मंगलमयी माँ की भाँति उन्होंने मुझे अपनी आनन्दमयी गोद में विश्राम दिया। उनके संरक्षण में, मैं चिन्ता मुक्त हो गया। वे ही मुझे सपरिवार लेकर अल्मोड़ा गये। राह में जहाँ भी तबियत विचलित होती – मैं और मेरी पत्नी किसी भावी भय की आशंका से काँप उठते तभी शीतल और सान्त्वनापूर्ण शब्द पड़ते कानों में – ''अरे चिन्ता क्यों करते हो, सब कुछ भगवान् पर छोड़ दो। और यदि होना ही है तो चलो इसे भी हो लेने दो।'' ''यह भी हो लेने दो'' – कैसे निर्भीक शब्द हैं! जब परिणाम के भुगतने के लिये इतनी दृढ़ता से तत्पर हो गये फिर वहाँ भय और चिन्ता के लिये स्थान ही कहाँ? और फिर गुरुदेव का साया तो था ही सिर पर!

वे निरन्तर हम लोगों के साथ रहे। राह में जो भी कष्ट हुए उन्होंने भी हम लोगों के साथ हँस-हँस कर बँटाये। हम लोग तख्त पर सोये और वे भी उसी पर लेट रहे। ऐसा लगता था कि वास्तव में वे हमारे हैं – अपने हैं और शायद उससे भी अधिक निकट के हैं। हमारे दुःख उनके दुःख हैं। अन्तर इतना है कि जहाँ हम घबरा उठते हैं वे हँस कर सहन कर लेते हैं और सहन करने की शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार वे पहाड़ों पर मेरे साथ ही रहे। दिगोली, चितई, विंसर आदि मुझे ले गये। मेरे साथ पैदल ही मीलों

की यात्रा की। मुझे बल दिया, शक्ति दी और दिया माँ में अखण्ड विश्वास। कभी-कभी तो यह सोच कर मैं सिहर उठता हूँ कि यदि वे न होते तो क्या होता? इसकी शायद मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। उनकी ही असीम कृपा से मेरे शरीर में नवजीवन संचार हुआ – खोई हुई शक्ति मुझे मिल गई और मिल गया जीवन संग्राम में हँस-हँस कर दृढ़ता के साथ, विश्वास के साथ लड़ने का अनूठा उपदेश!

इतना ही नहीं, उन्हें तो प्राणिमात्र से सहानुभूति थी, संवेदना थी। वे प्रत्येक के दुःख को अपने ऊपर ले लिया करते थे और उस व्यक्ति को दुःख से मुक्त करने का पूरा प्रयत्न करते थे। साधना के क्षेत्र में भी यदि कोई डगमगाता तो स्वयं आकर सम्हाल लिया करते थे। वे कहते, दुःखों से हमें घबराना नहीं है वरन् उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अपनाना है। जिस प्रकार पहाड़ पर चढ़ते समय कभी-कभी हमें घाटी में से भी गुज़रना पड़ता है इसी प्रकार साधना के क्षेत्र में बढ़ते-बढ़ते कभी हमें ऐसा लगता है कि हमारी प्रगति रुक गई है। हम नीचे जा रहे हैं। किन्तु उससे हमें हतोत्साहित नहीं होना है। बढ़ते चलना है विश्वास के साथ और एक दिन माँ भगवती स्वयं ही अपनी कृपा का द्वार खोल देंगी।

सेवा भाव तो मानो उनके दैनिक कार्यक्रम का एक अंग बन गया था। जहाँ उन्हें मालूम होता कि कोई साधक बीमार है तत्काल वहीं पहुँच जाते। उसके लिये जो कुछ बन पड़ता, करते। स्वयं भी औषधि देते थे और कुछ न हो तो अपने उज्ज्वल हास से उसकी पीड़ा तो कम कर ही देते थे। मुझे याद है कि झाँसी में एक बार श्री कुमठेकर जी बहुत बीमार थे और श्री राजपाली जी के यहाँ ठहरे हुए थे। स्वामी जो नित्य उन्हें स्वयं ही औषधि देते – उन्हें सान्त्वना देते और जब कभी उन्हें उदास देखते तो ऐसी बात छेड़ देते कि वे अपनी पीड़ा को भूल स्वयं हँसने लग जाते थे।

किन्तु शायद उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह थी कि उनके कहने और करने में पूर्ण साम्य था। जो वे सोचते, अनुभव करते और उचित समझते वही कहते और केवल कहते ही नहीं अपने जीवन में उसका अक्षरशः पालन भी करते थे। इस सम्बन्ध में मुझे उनके जीवन सम्बन्धी एक विशेष घटना याद हो जाती है – यह है उनकी मृत्यु-शैय्या का दृश्य। अप्रैल सन् 1952 में मैं हरिद्वार उनके दर्शन करने गया। वे श्री सांगी जी के स्थान पर ठहरे हुए थे। उनके ज़िगर में भयंकर फोड़ा था। शारीरिक कष्ट सहन करते-करते उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था और मुख-मण्डल पीत वर्ण का। किन्तु उनकी आत्मा या उनके चित्त पर इसका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता था। वही तेज, वही निर्भीकता, वही सौम्यता और वही आनन्द उनके मुख-मण्डल को आच्छादित किये हुए था। उनके प्रत्येक शब्द से अखण्ड विश्वास का ही आभास मिलता था, दुःख की चिन्ता का कोई चिन्ह नहीं। मैं कुछ गम्भीर था, उदास था किन्तु जाते ही अपने हास में उन्होंने मुझे भो समेट लिया। पीड़ा तो जैसे भगवती का प्रसाद बनकर आई हो। सबने कहा कि डाक्टरी चिकित्सा करवाई जाय किन्तु वे तो अन्त समय तक यही कहते रहे – 'मैं तो माँ का हूँ, मेरा सारा भार उसके ऊपर है। जैसी उसकी इच्छा होगी वही होगा। फिर डाक्टरी दवा के चक्कर में पड़कर झूठा सन्तोष प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों करूँ?' मैंने प्रथम बार उनके इस भव्यतम उज्ज्वल स्वरूप को देखा। जैसा उन्हें कहते सुना था वैसा उन्हें जीवन में भी पाया!! और महाशक्ति की इच्छानुसार ही वह पुण्य और भव्य ज्योति, महाज्योति में विलीन हो गयी!!!

(गढ़ा शिविर – सम्भवतया अप्रैल सन् 1943 में हुआ। इसकी ठीक-ठीक तारीख याद नहीं हैं। इस शिविर का प्रबन्ध तथा संचालन का भार पूज्य स्वामी जी ने मुझे ही सौंपा था। यह पहला शिविर था और प्रयोग के रूप में किया गया था। इसकी सफलता के पश्चात् ही उन्होंने शिविरों की समुचित व्यवस्था की और इनकी उपयोगिता और उचित संचालन के ऊपर दो तीन पुस्तकें भी लिखीं।

2.11.1954 **शिव नारायण सक्सेना**
शाहजहाँपुर सिटी मजिस्ट्रेट

भगवान् की गोद सबके लिये खाली है

('कल्याण' पत्रिका से उद्धृत)

हमारी संस्कृति में यह बात आयी है कि **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'** (गीता 8/11) 'विद्यार्थी ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रविष्ट क्यों हुआ ? उस परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा से।' विद्या होनी चाहिए जगत् में अर्थ की प्राप्ति के लिये। क्योंकि आवश्यकता है, परन्तु वह अर्थ हो मोक्ष के सम्मुख जाने वाला। यदि ऐसा है तब तो अर्थ, नहीं तो अनर्थ। आज के युग में हम प्रत्येक चीज आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं। जैसे हमारा आश्रम है, हमारा विद्यालय है, हमारी संस्था है – हमको इससे क्या आय होगी, क्या मिलेगा इससे, यह देखते हैं। **'यदिच्छन्तः'** नहीं, भगवान् की प्राप्ति के लिये नहीं। हमको आर्थिक लाभ क्या होगा। हम यह देखते हैं। इसलिये जहाँ आर्थिक लाभ नहीं हो, वह धर्म भी आज हमारे लिये उपेक्ष्य बन गया है। वास्तव में लाभ की जगह थी हमारे यहाँ परमार्थ। सारे संस्कार हमारे परमार्थ को लेकर होते थे। जीवन का प्रारम्भ भी परमार्थ में और जीवन का अन्त भी परमार्थ में। इससे भगवान् की ओर मुड़ा हुआ जीवन भगवान् में लग जाता है। जहाँ हमारे जीवन का ध्येय भगवान् हो जाते हैं अर्थात् भगवान् हमारे जीवन के सामने हो जाते हैं और हमारा जीवन भगवत् परायण हो जाता है। वहाँ प्रत्येक चेष्टा भगवत् प्रेरित होती है और प्रत्येक चेष्टा का फल वह चाहता है भगवत् प्रीति। ठीक इससे उलटा भोग में होता है। मन्दिर में जाकर भी वह भगवान् से कहेगा महाराज धन मिल जाये, पुत्र मिल जाये, अधिकार मिल जाये, यश मिल जाये। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

तुलसी हरिनाम सुधा तजि
शठ हठि पियत विषय विष माँगि।

मूर्ख माँग-माँग कर जहर पीता है। भगवान् ने कहा, हम नहीं देंगे तुम को जहर, तुम हमारे प्यारे हो! वह कहता है नहीं महाराज, मीठा है दे दो! भोगपरायण व्यक्ति की सारी चेष्टा भोग प्रेरित होगी। भोगपरायण जीवन और भागवत् जीवन में यह बड़ा अन्तर है। जब भोगों में वितृष्णा होने लगे, भोग बुरे लगने लगें, भोगों से चित्त हटने लगे, इनसे ऊबने लगे, दूसरे के भोग देखकर चित्त ललचाये नहीं, तब समझना चाहिए कि जीवन भगवान् की ओर मुड़ रहा है।

एक बार की बात है, मैं कुम्भ में गया था। हमारे एक मित्र साधु थे, बड़े अच्छे आदमी, नाम हम नहीं बतायेंगे। बड़े सात्त्विक आदमी और बड़े सरल हृदय के साधु। एक दिन हमसे बोले भाई जी, कुछ गड़बड़ मालूम होती है। भगवान् की कृपा शायद कम है। हमने कहा क्यों? तो बोले देखिये न! उनके शिविर में तो बड़े-बड़े मन्त्री और बड़े-बड़े धनी लोग आते हैं तथा बड़ा चढ़ावा आता है, बहुत ज्यादा यज्ञ हो रहे हैं और हमारे यहाँ लोग आते ही नहीं। उन्होंने यह दुर्भाव से नहीं कहा, परन्तु एक मनोवृत्ति का पता लगता है कि दूसरे के भोग को देखकर जी ललचाता है। अपने पास भोग न होने पर हम भगवान् की अकृपा मानते हैं और अपने को अभागा मानते हैं। यह प्रत्यक्ष भोगाश्रय है। दूसरे के पास की वस्तु को देखकर उस पर भगवान् की कृपा मानना तथा हमारे पास नहीं है यह देखकर अपने पर भगवान् की अकृपा मानना, यह प्रत्यक्ष सिद्ध करता है कि उस वस्तु में जिसके मिलने पर अपने को भाग्यवान् मानता है तथा जिसके न मिलने पर अभागा मानता है – उस वस्तु में उसकी मुख्य बुद्धि है, उस वस्तु को ही वह परम श्रेय, साध्य मानता है। और उसी मुख्य बुद्धि से वह भगवान् से प्रार्थना करता है कि भगवान् हमारा यह काम कर दें। इसी बुद्धि से वह भगवन् नाम लेने पर कहता है कि भगवान्! हमने आज लाख नाम लिये हैं। लाख नाम हम अर्पण

करते हैं, बदले में भगवान् हमको ये चीज दे दें।

भोगपरायण मनुष्य की साधना भी भोग की सेवा में लगेगी। उसकी उपासना भोग की सेवा में लगेगी। वह भगवान् से भी कहेगा कि हम आपके भक्त हैं, देखिये हम आपका नाम जपते हैं, हमें तो आपका ही आसरा है, अब आपके बिना हम किससे कहें। यह हमारा लड़का मर रहा है, इसे आप बचा लें। ऐसा करना कोई बुरी चीज़ नहीं है, पाप नहीं है, पर मूर्खता तो है ही! जो भगवान् अपने-आपको देते हैं, उनसे केवल लड़के को बचाने की प्रार्थना करना अविवेक तो है ही। लड़का तो आज नहीं कल मरेगा, या पहले हम मर जायेंगे लड़के को तो छोड़ना पड़ेगा ही। भगवान् से हमने क्या चाहा! हमारी जो भोग-बुद्धि है, वह भगवान् से भी भोग-सेवा का काम करवाना चाहती है। पाप एवं बुरे कर्म करने की अपेक्षा भगवान् से माँगने में कोई बुराई नहीं, परन्तु भगवान् की महत्ता का ज्ञान तो नहीं है।

भगवान् की ओर मुख मोड़ लेने पर भोग बुरे मालूम होने लगते हैं। मैं एक बार कोलकाता गया। मैंने वहाँ उन लोगों के सामने भी ऐसी ही कुछ बातें कहीं। बहुत बड़े-बड़े धनी लोग मुझसे मिले। जिस-जिससे एकान्त में बात हुई सबने कहा कि हम बहुत दुःखी हैं। अब जिनके पास पैसा नहीं है, वे मानते हैं कि न जाने इनको कितना सुख होगा। क्योंकि इनके पास सम्पत्ति है, पर उनके दुःख के कारण दूसरे हैं। जब तक भोगपरायणता है तब तक दुःख रहेगा ही रहेगा। इसलिये भगवान् की ओर मुड़ना ही चाहिए। भगवान् की ओर लगने पर भगवान् की कृपा से इस मोह का नाश प्रारम्भ हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि मिट जाता है तुरन्त। पर यदि वैसा न हो तो यह मानना चाहिए कि कम-से-कम इतना होने पर भोगों से वितृष्णा होने लगती है। भोगों में हीन बुद्धि होती है। भोगों में सुख की कल्पना नहीं होती। भोग में भगवान् की कृपा के दर्शन नहीं होते। चित्त भगवान् की ओर जाने के लिये उतावला हो उठता है। ऐसी स्थिति जब होने लगे तब समझना चाहिए कि हम मानव-जीवन के ठीक रास्ते पर आ गये। आगे बढ़ना है। भगवान् बढ़ायेंगे – यह सच्ची बात है।

मोह-नाश के दो उपाय हैं – एक तो भोगों में, विषयों में दुःख इत्यादि देख-देखकर चित्त को हटाना, मोह-नदी को तैर कर पार करना और दूसरा अपने-आपको भगवान् के चरणों में डालकर नौका लिये हुए उनको बुला लेना, बड़े मजे में उस पर सवार होकर उनको देखते हुए उनसे बातचीत करते हुए, उनसे मिलते हुए, उनके रस का ग्रहण करते हुए सुखपूर्वक निश्चिन्तता के साथ पार हो जाना। मोह नदी अपने-आप पीछे रह जायगी।

– नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी
श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार

अमृत-विन्दु

पहले हम बड़े थे, फिर हमने धन पैदा किया। अब उस धन के कारण अपने को बड़ा मानने लग गये तो वास्तव में धन बड़ा हो गया, हम छोटे हो गये! धन की इज्जत हो गयी, हमारी फज़ीती हो गयी!

❖ ❖ ❖

– श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

सम्पत्ति पर विचार करें

('राम सन्देश' पत्रिका से उद्धृत)

देखो, एक सम्पत्ति तो बाहर की है। जो बाहर की सम्पत्ति है, उसका हमारे पास हिसाब भी है और यदि कोई देखना चाहे, तो हम उसे दिखा भी सकते हैं। हम उसे बता सकते हैं कि इतना हमारे पास इतना सोना है, इतनी चाँदी है, इतने हीरे हैं, इतने जवाहरात हैं, हमारे पास इतनी जमीन-जायदाद है, हमारे पास इतने कल-कारखाने हैं, हमारे पास इतने नौकर-चाकर हैं, हमारे पास इतनी मोटरें हैं, सब बता सकते हैं। इसके पूरे बही-खाते हमारे पास हैं। लेकिन एक सम्पत्ति हमारे भीतर है, उसका कोई हिसाब-किताब हमारे पास नहीं है। उसका कोई बही-खाता हमारे पास नहीं है, उस सम्पत्ति को हम किसी को दिखा भी नहीं सकते। बदकिस्मती यह है कि वह सम्पत्ति दिखाने की है ही नहीं। उस सम्पत्ति का हमें कोई भी ध्यान नहीं है।

देखो, आसुरी सम्पत्ति मनुष्य को शैतान बना देती है, और दैवी सम्पत्ति मनुष्य को भगवान् बना देती है। आसुरी सम्पत्ति हमें नरक की ओर ले जाती है, जबकि दैवी सम्पत्ति हमें स्वर्ग की ओर ले जाती है। किस सम्पत्ति की ओर हमारी रुचि और रुझान है, इसे जानना है, इसके लक्षणों को जानकर।

एक सूफी फकीर था। वह अपने शिष्यों को हमेशा ही यह कहा करता था कि मैं दो ही किताबें पढ़ता हूँ – एक भगवान् की और एक शैतान की। तो उनके शिष्य बार-बार उनसे पूछते थे कि भगवान् की किताब का तो हमें पता है कि वह कौन सी किताब है – गीता भगवान् की किताब है, उपनिषद भगवान् की किताब हैं, रामायण भगवान् की किताब है, कुरान भगवान् की किताब है, बाइबल भगवान् की किताब है, गुरुग्रन्थसाहब भगवान् की किताब है, बुद्ध का जो उपदेश है, वो भी भगवान् की किताब ही है, यह तो हमें मालूम है। लेकिन सूफी फकीर के सेवक अपने गुरु से पूछते थे कि हमें यह तो बता दो कि शैतान की कौन सी किताब है। वह सूफी फकीर हंस देता था। लेकिन वह किसी को यह नहीं बताता था कि शैतान की कौन सी किताब है। जीवन भर उसके शिष्य ज़ोर लगाते रहे, लेकिन उसने कभी उसका ज़िक्र नहीं किया। और जिस दिन उस सूफी फकीर की मृत्यु हुई, उसकी मृत्यु होते ही उसके सेवक दौड़कर उसके कमरे की ओर गये यह देखने के लिये कि शैतान की कौन सी किताब है। जैसे ही वे दोनों कमरों के भीतर गये कि दो तख्तियाँ लगी हुई थीं, एक पर लिखा हुआ था भगवान् की किताब और दूसरी पर लिखा हुआ था शैतान की किताब। जिस पर भगवान् की किताब की तख्ती लगी हुई थी, उसको तो सबने देख लिया। उसमें गीता थी, रामायण थी, धार्मिक ग्रन्थ थे, लेकिन जब वे उस ओर झुके जहाँ शैतान की किताब की तरफ इशारा किया गया था, तो वे आश्चर्य से भर गये, वहाँ दैनिक अखबार रखा हुआ था। रोज़ का अखबार रखा हुआ था। सूफी फकीर के शिष्यों की आँखों में यह देखकर आँसू झलक आये, उनके शरीर में रोमांच हो गया।

देखो, शैतान बनाने की जो चीजें हैं वे ये हैं और भगवान् बनाने की चीजें दूसरी हैं। मैं यह नहीं कहता कि कोई अखवार न पढ़े, जरूर पढ़े, मैं भी पढ़ता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है। लेकिन ये शैतान बनाने के उपाय हैं, ये भगवान् बनाने के उपाय नहीं हैं। इनसे लोग शैतान बनने की कला सीख लेते हैं।

श्रीकृष्ण इसमें जिक्र कर रहे हैं, लक्षण इसलिये बता रहे हैं ताकि हमको यह पता चल जाये कि कौन सी सम्पत्ति है हमारे पास।

देखो, दैवी सम्पत्ति से मनुष्य को शान्ति मिलती है, सन्तोष मिलता है, उससे मनुष्य को तृप्ति मिलती है, उससे मनुष्य को आनन्द मिलता है। दैवी सम्पत्ति से मनुष्य की वासनायें कम होती हैं। दैवी सम्पत्ति

जब मनुष्य के हृदय में आती है, तो ध्यान करने में मन लगता है, समाधि में मन लगता है। और जब दैवी सम्पत्ति उछालें ले रही होती है हमारे अन्दर, तो उस समय हम प्रार्थना करने में डूब जाते हैं। उस समय जप और तप की ओर हमारी प्रवृत्ति होती है। दैवी सम्पत्ति जब हमारे भीतर समुद्र के पानी की तरह तरंगें ले रही होती है, उस समय स्वाभाविक ही हमारे हृदय में वैराग्य होता है, इन्द्रियों पर संयम होता है, मन में गहरी शान्ति होती है। जब दैवी सम्पत्ति का जोर हमारे हृदय में आता है, तब हमारी वाणी में मिठास आ जाता है, हमारी वाणी में माधुर्य आ जाता है। उस समय हमारे व्यवहार में पवित्रता आ जाती है हमारा व्यवहार स्वच्छ होता है। उस समय कोई भी छल, कपट, किसी भी तरह की बेईमानी नहीं होती। तब हमारा मन फूल की तरह हल्का होता है।

दैवी सम्पत्ति जिसके पास आती है, उसके ये लक्षण हैं। बताऊँगा आगे! लेकिन स्वाभाविक रूप से लक्षण बताने का तात्पर्य यही है। और जब आसुरी सम्पत्ति हमारे भीतर आती है, तो हमारी अशान्ति बढ़ जाती है, बेचैनी बढ़ जाती है, व्याकुलता बढ़ जाती है, तथा पूरे शरीर में तनाव बढ़ जाता है। तब न तो ध्यान करने में मन लगता है, न ही किसी सत्संग में हमें कोई रस आता है। भले ही बैठ जायें जाकर, लेकिन हमारे जीवन में कोई रस नहीं आता। हमारे विकार बढ़ने लगते हैं, हमारी वासनायें बढ़ने लगती हैं, हमारे भीतर हिंसा के भाव आ जाते हैं। उस समय हमारी वाणी में कड़वाहट आ जाती है। उस समय हमारा व्यवहार रुखा-सूखा हो जाता है। हमारा मन इतना चिड़चिड़ा हो जाता है कि लड़ाई करने का मन होता है। न घर में मन लगता है, न मन्दिर में मन लगता है, न किचन में मन लगता है। कहीं भी हमारा मन नहीं लगता। आसुरी सम्पत्ति जब हमारे जीवन में आती है, तो यह हाल होता है। मन दौड़ता रहता है इधर-उधर बावलों की तरह – ये हैं आसुरी सम्पत्ति के लक्षण।

श्रीकृष्ण अर्जुन की ओर इशारा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण कह रहे हैं, अर्जुन एक आसुरी सम्पत्ति है, एक दैवी सम्पत्ति है। तो आप जाँचते रहना कि कौन-सी सम्पत्ति काम कर रही है, आपके भीतर। किस सम्पत्ति की ओर देख रहे हैं आप। काफी सावधान रहने की जरूरत है इसके लिये।

– स्वामी कूटस्थानन्द

ग्रहों का नहीं, अपने ही कर्मों का फल

पार्वती जी ने पूछा – भगवन्! आपका मत है कि मनुष्यों की जो भली-बुरी अवस्था है, वह सब उनकी अपनी ही करनी का फल है। आपके इस मत को मैंने अच्छी तरह सुना; परन्तु लोक में यह देखा जाता है कि लोग समस्त शुभाशुभ कर्म फल को ग्रहजनित मानकर प्राय: उन ग्रह-नक्षत्रों की ही आराधना करते रहते हैं। क्या उनकी यह मान्यता ठीक है?

शिव जी ने उत्तर दिया – महाभागे! ग्रह और नक्षत्र मनुष्यों के शुभ और अशुभ की सूचनामात्र देने वाले हैं। वे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं। प्रजा के हित के लिये ज्यौतिषचक्र (ग्रह-नक्षत्र-मण्डल) – के द्वारा भूत और भविष्य के शुभाशुभ फल का बोध कराया जाता है। किन्तु वहाँ शुभकर्म के फल की सूचना शुभ ग्रहों द्वारा प्राप्त होती है और दुष्कर्म के फल की सूचना अशुभ ग्रहों द्वारा। केवल ग्रह और नक्षत्र ही शुभाशुभ कर्म फल को उपस्थित नहीं करते हैं। सारा अपना ही किया हुआ कर्म शुभाशुभ फल का उत्पादक होता है। ग्रहों ने कुछ किया है – यह कथन लोगों का प्रवादमात्र है।

(महाभारत, अनुशासन० 145)

जहाँ भाव, वहाँ पूर्णता

('राम सन्देश' पत्रिका से उद्धृत)

किसी व्यक्ति के लिये तुमने अपने जीवन के सब दरवाजे खुले छोड़ दिये और किसी ने तुम्हारे लिये। प्रेम हमारे मन में बहती हुई भागीरथी है। परहित तथा परकल्याण इसी भागीरथी का एक निःशुल्क जलकोष है जो चाहे घाट पर आये और जितना चाहे ले जाये। देना ही जिसका लक्ष्य हो। प्रेम से बड़ा दान और कुछ नहीं हो सकता। प्रेम हमारे मन की गहरी संवेदना से उत्पन्न परम पावन फल है। जहाँ भाव होता है, वहाँ पूर्णता होती है, वहीं प्रेम होता है। प्रेम एक अनुभूति है, जिसे महसूस किया जाता है। लेकिन यह सिर्फ अपने भीतर की अनुभूति नहीं है, यह दूसरे के भावों की अनुभूति है। उसकी अनुभूति को खुद महसूस कर लेना, जिसे आप प्यार करते हैं, बिलकुल उसी की तरह। जैसे माँ अपने बच्चे के मन की बातों को समझ जाती है, रात में अपनी नींद त्यागकर उसे दूध पिलाती है। इसीलिये उसके स्पर्श से बच्चे की तकलीफ कम हो जाती है। माँ के हाथ का स्पर्श पाते ही उसे पता चल जाता है कि यह वही स्पर्श है जो मेरे दर्द को बिलकुल ठीक-ठीक अनुभव कर रहा है।

यह महसूस करते ही दर्द बंट जाता है, पीड़ा घट जाती है। दूसरे की पीड़ा का यही अनुभव प्रेम है। पिता और पुत्र के रिश्ते को लें। वह अपने पिता से बिना डाँट खाये ही डरता रहता है, लेकिन वही समय आने पर अपने पिता की ढाल बनकर खड़ा हो जाता है। अजीब घालमेल है। गोया बेटे के उस डर में भी पिता के प्रेम का आभास है। प्रेम दोनों में है। इससे बिलकुल अलग किस्म के प्रेम का रूप हमें भाई-बहन या भाई-बहन के रिश्ते में दिखता है, जिसमें झगड़ा भी होता है, ईर्ष्या भी होती है और एक-दूसरे के लिये पीड़ा भी होती है।

इसके विपरीत जब कामदेव के तीर दो अनजाने लोगों पर चलते हैं, तो उनमें भी प्रेम की उत्पत्ति होती है। मन कल्पनाओं में खोने लगता है। लेकिन अनुभूति का पक्ष उसमें भी इतना ही महत्वपूर्ण होता है। इसमें दोनों एक-दूसरे को आत्मीयता की अनुभूति कराते हैं। प्रेम उस समय भी एक दुर्लभ मानसिक शान्ति का अनुभव कराता है। जो विचार, संसर्ग भावनाओं से जुड़ जाता है उसे खत्म नहीं किया जा सकता। यह स्वाभाविक है।

लेकिन इसी की वजह से कुछ लोग प्रेम को भोग-वासनाओं से हुआ मान लेते हैं। पर प्रेम ऐसा नहीं है। वह आत्मा का सूत्र है। इसीलिये बचपन या किशोरावस्था का प्रेम जीवनपर्यंत बना रहता है, क्योंकि वह निश्छल होता है, उसमें वासना नहीं होती। हमारा शरीर सुख-दुख के मायाजाल में फंसा है। प्रेम एक प्रार्थना है अनन्त की, अज्ञान की। उसे जितना लुटाओ, वह बढ़ता जायेगा। जब भक्त अपनी लौ ईश्वर से लगाता है और परम आनन्द का अनुभव करता है तो वह ईश्वर से उसी आत्मीयता का, उसी नज़दीकी का अनुभव करता है। सूफ़ी ख़ुदा को अपने महबूब के रूप में देखता है, जब वह ख़ुदा से एकाकार होता है। तब प्रेम एक साधन बन जाता है ईश्वर के करीब होने का।

प्रेम के रस का प्याला पीकर मीरा 'हरि-हरि' भजने लगी, वहीं राधा प्रेम के विरह में भी परम आनन्द का अनुभव करती है। प्रेम सीता है जो अग्नि परीक्षा देने के लिये तैयार हो जाता है। प्रेम में स्वसुख का त्याग करना होता है और अपने आश्रित के लिये जीना होता है। प्रेम बाहरी आकर्षणों से ऊपर है, इसमें दिखावा नहीं होता। एक भिखारी भीख मांग रहा था, एक सज्जन उधर से गुजरे, किन्तु उनके पास कुछ नहीं था। उन सज्जन ने भिखारी के हाथ में हाथ देकर कहा – भाई, आज मेरे पास देने के लिये कुछ नहीं है, कल ज़रूर दूँगा। उस भिखारी की आँखें नम हो गईं, उसने कहा – मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए, बस जब आप इधर

से गुज़रें, रुककर मुझसे ऐसी ही दो बातें कर लेना। मुझे सुकून मिलेगा। प्रेम में अपनत्व आवश्यक है। जब वह विश्वास देता है, तो विश्वास जीत भी लेता है। विश्वास सम्बन्धों में पारदर्शिता लाता है। दो व्यक्तियों में छुपाने जैसा कुछ न हो, दो हृदय अपने आवरण के बाहर हों, वही प्रेम है। वहाँ अहंकार नहीं रह जाता।

मेरा को मैं समझना अहंकार है। ध्यान रहे, मेरा सदैव 'मैं' से अलग होता है। मेरा स्थायी नहीं है। यह आता-जाता है, मिलता-बिछुड़ता है। मेरा के इस स्वभाव को जानना और सच्चे मैं की अनुभूति ही तत्वज्ञान है।

– आनन्द त्यागी

❖ ❖ ❖

भाग्य का खेल

('राम सन्देश' पत्रिका से उद्धृत)

एक बार एक ऋषि भगवान् के पास किसी कार्य से गये। उस वक्त भगवान् पृथ्वी के मनुष्यों का भाग्य लिख रहे थे। ऋषि ने सोचा कि क्यों न अपने कुछ प्रिय शिष्यों का भाग्य पूछ लूँ। इससे मैं उन शिष्यों पर अपना प्रभाव अधिक जमा सकूँगा और उनका मार्गदर्शन भी सही ढंग से कर सकूँगा। अब ऋषि ने भगवान् से अपने मन की बात कही तो भगवान् ने उत्तर दिया – 'ऋषिवर! यह सही है कि जिन लोगों का भाग्य लिखा जा रहा है, उनमें आपके कुछ शिष्य भी हैं। किन्तु इस भाग्य को जानने पर मैंने रोक लगा रखी है।' ऋषि ने पूछा – 'क्यों भगवन? अपना भाग्य जानने पर रोक क्यों है?' उत्तर में भगवान् ने कहा – 'जानने में अनर्थ ही अनर्थ है। किसी को अच्छा भाग्य बताया जायेगा तो उसका पुरुषार्थ घट जायेगा। आलसी बन जायेगा। वह सोचने लगेगा कि यह तो मेरे भाग्य में लिखा है, सो मिल ही जायेगा। फिर मैं क्यों काम करूँ। यदि किसी का भाग्य खोटा बताया जाता है तो वह व्यक्ति इस बात को मानकर निराश हो जायेगा कि मेरे भाग्य में निराशा और असफलता के सिवा कुछ है ही नहीं। वह किसी काम को करने से पहले ही सोचेगा कि जब मेरे भाग्य में यह मिलना नहीं लिखा है तो फिर मैं इसे क्यों करूँ।

'इस तरह जो व्यक्ति भाग्य का लेख अपने पक्ष में मान लेगा, वह भाग्यवादी बन जायेगा और इस तरह वह पुरुषार्थ विरोधी भी हो जायेगा। भाग्य अच्छा है या बुरा – दोनों ही बातें जानना मनुष्य के हित में नहीं है, इसी कारण मैंने इस रहस्य को अपने पास ही छिपा रखा है।'

ऋषि ने पूछा – 'भगवन्! कृपया इतना और बता दीजिये कि क्या भाग्य का लेख मिट भी सकता है?' इस प्रश्न को सुनकर भगवान् हंसे और बोले – 'अब तुम जानते ही नहीं कि भाग्य का लेख क्या है तो उसके मिटने या बने रहने की बात कहाँ से आ गई। इसे यों समझो कि तुम अपने पुरुषार्थ से भाग्य का लेख लिखते हो और मिटाते हो। तुम कोई काम करते हो और उसमें सफलता न मिलने पर भाग्य को दोष देते हो – मेरे तो भाग्य में ही नहीं है या मेरा तो भाग्य ही खराब है। और जब पुरुषार्थ करने से सफलता मिलती है तब यह याद करना भूल जाते हो कि भाग्य में सफलता तो लिखी थी – किन्तु इतने प्रयत्नों के बाद।' इसका अर्थ हुआ कि भाग्य प्रयत्नशील है – 'पत्थर की लकीर नहीं?' ऋषि ने पूछा।

'हां! मनुष्य अपने कर्मबल और पुरुषार्थ से ही भाग्य बनाता और बिगाड़ता है। मैं तो सिर्फ उसका लेखा-जोखा रखता हूँ।' भगवान् ने उत्तर दिया।

भाग्य की निर्भयता हमें निराशा की ओर धकेलती है। हमें सक्रिय नहीं, निष्क्रिय बनाती है, हमें कर्मठ नहीं, अकर्मण्य बनाती है। किसी ने कहा है कि भाग्य के भरोसे बैठे रहने से भाग्य सोया रहता है और हिम्मत बांधकर खड़े होने पर भाग्य भी उठ खड़ा होता है।

– आचार्य 'अज्ञ'

सबसे बड़ा दोष असत्य

('कल्याण' पत्रिका से उद्धृत)

आज जो सामाजिक मूल्य चलते हैं, उनमें बड़ा भारी फरक करने की जरूरत है। आज कुछ महापातक माने जाते हैं, जैसे सुवर्ण की चोरी करना, शराब पीना, व्यभिचार करना, खून करना आदि। बाकी के सब उपपातक माने जाते हैं। लेकिन हमारी साधना तब तक आगे न बढ़ेगी, जब तक हम यह न समझेंगे कि दुनिया में जितने दोष होते हैं, जैसे खून, व्यभिचार आदि और जिन्हें दुनिया बहुत बड़ा दोष मानती है, वे सब दोष गौण हैं और मुख्य दोष है असत्य! असत्य ही एक नैतिक दोष है, बाकी सारे व्यावहारिक दोष हैं।

मान लीजिये, मेरे हाथ से कुछ बुराई हुई, व्यभिचार हुआ तो मैं उसे छिपाता हूँ। छिपाना उस बुराई से भी बदतर है। लेकिन समाज ने व्यभिचार को असत्य से भी बड़ा माना और वह उसको बिलकुल माफ नहीं करता। लेकिन व्यभिचारी व्यभिचार को छिपाता है तो उसकी इज्जत को हानि नहीं पहुँचती है। उसका नतीजा यह होता है कि लोग बुराई को छिपाते हैं। मान लीजिये, मेरे पेट में बीमारी है तो मैं उसका इजहार करता हूँ। इसलिये बीमारी डॉक्टर की समझ में आती है और डॉक्टर की मदद मिलती है। वैसे तो मुझे बीमारी के लिये शर्मिंदा होना चाहिए, क्योंकि अधिकतर बीमारियाँ मेरी गलतियों के कारण ही आती हैं, लेकिन मैं उसे छिपाता नहीं, क्योंकि वह सुनकर आपके मन में मेरे लिये घृणा पैदा नहीं होती है, दया ही पैदा हो सकती है। आप उसे क्षम्य मानते हैं, इसलिये मैं उसका इज़हार करता हूँ और मुझे डॉक्टर की, लोगों की सलाह और मदद मिलती है। लेकिन दुराचार को मैं प्रकट नहीं करता हूँ, क्योंकि जिस सहानुभूति से मेरी बीमारी की तरफ देखा जाता है, उस सहानुभूति से उसे नहीं देखा जाता है। उसकी दुनिया में निन्दा होती है और मुझ में यह हिम्मत नहीं होती कि दुनिया बुरा माने तो भी मैं उसे प्रकट करूँ। ऐसा प्रकट करने वाला तो कोई महात्मा ही होगा। इसलिये मैं उसे छिपाता हूँ। जैसे कुष्ठरोगी अपनी बीमारी को छिपाता है; फिर बीमारी बहुत बढ़ने पर बताना ही पड़ता है। लेकिन तब उसका रोग दुरुस्त होना मुश्किल हो जाता है। प्राथमिक अवस्था में अगर बीमारी की बात खुलती है तो वह दूर भी होती है। परन्तु लोगों में उसके लिये घृणा है, इसलिये कुष्ठ रोगी उसे छिपाता है। उसी तरह दुराचार के लिये घृणा है, इसलिये लोग उसे छिपाते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि उसके निवारण का रास्ता नहीं मिलता। अतः समाज में यह विचार स्थिर होना चाहिए कि जितने पाप माने जाते हैं, वे सब शरीर के स्थूल रोगों के समान ही मानसिक रोग हैं, इसलिये उनसे घृणा न करें, बल्कि उनकी ओर दया की निगाह से देखें। सार यह है कि हमें समझना चाहिए कि सर्वोत्तम नीति, धर्म, सत्य है और सबसे बड़ा अधर्म है छिपाना – असत्य! यह मूल्य हमें जब तक स्थापित नहीं करेंगे तब तक समाज का स्वास्थ्य सुधरेगा नहीं।

गलत मूल्य की पैठ – महापुरुषों में कई दोष होते हैं। हमने सुना है कि ऋषि क्रोध करते थे। लेकिन कोई झूठा हो और फिर भी सत्-पुरुष हो, ऐसा नहीं हो सकता। सत्य तो बुनियादी चीज है। प्राचीन काल से आज तक इसे अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। लेकिन सियासत, मजहब और समाजशास्त्र ने नैतिक मूल्य के नाम पर तर-तम भाव को छोड़ दिया है और जिन नैतिक मूल्यों की कीमत कम थी उनकी कीमत बढ़ायी तथा जिनकी ज्यादा कीमत थी उनकी कम की है। सत्य को केवल बच्चों के और संन्यासियों के लिये रख छोड़ा है और बाकी सबके लिये अपवाद रखे है। वे अपवाद इतने ज्यादा हैं कि संस्कृत-व्याकरण में जैसे नियम से भी ज्यादा अपवाद

होते हैं और उनकी लम्बी फेहरिस्त बनती है, वैसे ही सत्य का उपभोग कब न किया जाये, इसकी लम्बी फेहरिस्त बन जाती है। राजनीति में, व्यापार में, अदालत में और शादी में भी असत्य चलता है और यह दलील भी पेश की जाती है कि उसे असत्य ही न कहा जाये। यानी असत्य की व्याख्या ही बदलना चाहते हैं। इसके कारण समाज का कुल ढाँचा बिगड़ गया है। लेकिन मूल्यों में सत्य से बढ़कर कोई मूल्य नहीं हो सकता। नीतिमत्ता और सदाचार के बाकी के जो मूल्य हैं, वे दोयम दर्जे के हैं।

सत्य प्राथमिक गुण माना गया है, परन्तु बस इतना ही नहीं। सत्य ही एक नैतिक तत्त्व है और बाकी के सारे नैतिक गुण नहीं हैं, सामान्य गुण या दोष हैं, यह विचार नीतिशास्त्र में रूढ हो जाये तो समाज में सुधार होगा और आध्यात्मिक साधना में उससे मदद मिलेगी। जहाँ मनुष्य सत्य को छिपाता है, वहाँ दण्ड से बचने के लिये छिपाता है। उसका छिपाना कुशलता भी मानी जाती है। अतएव दोषों के लिये दण्ड ही नहीं होना चाहिए। बीमार को दण्ड नहीं देते। कभी दवा, कभी उपवास, कभी आपरेशन यह सारा उपचार है, सेवा है, दण्ड नहीं। वैसे ही समाज में जितनी बुराइयाँ हैं, उन सबके लिये उपचार ही होने चाहिए, दण्ड नहीं। यह बात समाज में रूढ हो जाये तो आसानी से मन दुरुस्त हो सकता है और समाज बदल सकता है। आज दण्ड देकर सब दोषों को दबाने की या छिपाने की वृत्ति बढ़ी है। उससे अन्तः शुद्धि नहीं होती और परिणामस्वरूप बुराइयाँ फैलती हैं।

निरपेक्ष मूल्य – आज व्यक्ति धर्म और समाज धर्म में फर्क किया जाता है। व्यक्ति के लिये जो गुण ठीक है, वह समाज के लिये बेठीक माना जाता है। यह जो गुणों का बँटवारा किया जाता है, वह भयंकर है।

फिर उसमें कुछ ग्रेडेशन किये जाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह – ये जो पाँच व्रत हैं, उनका एक हद तक हम पालन करेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं। यह ठीक है कि आदमी ने एक मर्यादा मान ली तो वह कदम-ब-कदम अच्छाई की तरफ आगे बढ़ सकता है, और व्रतों के बारे में तो यह समझ में आ सकता है, लेकिन सत्य के बारे में कहा जाये कि मैं सत्य एक हद तक बोलूँगा तो वह समझ में नहीं आता। सत्य तो बुनियाद है। वह आपका राईट एंगल है। उसमें भी थोड़ा फरक मान लिया जाये कि 80 अंशका या 85 अंशका कोण हो तो भी उसको राईट एंगल मानेंगे तो कुल-का-कुल व्यवहार टूट जायगा। हाँ, गलती से असत्य का व्यवहार हो तो वह माफ किया जा सकता है। परन्तु जहाँ तक सत्य का तालुक है, उसको निरपेक्ष-नीति (एब्सोल्युट वैल्यू) मानकर ही उसका आचरण करना चाहिए।

सत्य का थोड़ा पालन और थोड़ा नहीं, यह कोई अर्थ नहीं रखता। किसी मनुष्य के बारे में कहा जाये कि वह आधा जिन्दा है और आधा मरा हुआ है तो क्या समझा जाये? या तो कहिए कि वह मरा है या जिन्दा है। सत्य पूर्ण वस्तु है। बच्चा छोटा है इसलिये वह आठ आने सत्य बोलेगा, ऐसा नहीं है। वह सत्य बोलेगा, पूर्ण सत्य बोलेगा। सत्य पूर्ण वस्तु है, अपरिवर्तनीय मूल्य है, यद्यपि वह आज स्थापित नहीं है। ज्ञान के अभाव में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो सत्य नहीं होतीं, परन्तु उनको असत्य नहीं, गलत कहेंगे। जैसे – पहले माना जाता था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य घूमता है। हकीकत में यह बात गलत थी, लेकिन वह नैतिक असत्य नहीं है। मैं एक चीज नहीं जानता और उसके कारण कुछ गलत या मिथ्या बोलता हूँ तो वह नैतिक असत्य नहीं है, वह ज्ञान के अभाव में बोला गया है। जैसे-जैसे विज्ञान फैलेगा, वैसे-वैसे ज्ञान बढ़ेगा और सत्य धीरे-धीरे प्रकाशित होगा। लेकिन जो कहता है कि सत्य का एक हद तक पालन करूँगा, वह नैतिक असत्य कहा जायेगा। सत्य हमेशा पूर्ण होता है और उसका एक गौण तथा एक प्रधान रूप नहीं होता, उसका तो एक

ही रूप होता है।

सर्वोदय की बुनियाद – सब में मैं हूँ और मुझ में सब हैं, इसलिये मैं अपने निजी जीवन में, व्यापार आदि में, सामाजिक जीवन में और किसी भी जगह असत्य का व्यवहार नहीं कर सकता; क्योंकि सब जगह अगर मैं हूँ, तो असत्य कैसे शोभा देगा? कैसे छिपाऊँ और किससे छिपाऊँ? जिससे छिपाना है, वह भी मैं ही हूँ न?

यह महान् सत्यनिष्ठा सर्वोदय की बुनियाद है। कुछ लोग कहते हैं कि इस निष्ठा से सर्वोदय समाज में अधिक लोग नहीं आयेंगे। मैं कहता हूँ कि ऐसा कहने वाला भगवान् की जगह लेना चाहता है। मैं वह जगह नहीं ले सकता।

मानवों में शुभ प्रेरणा क्यों पैदा नहीं होगी? होगी ही, ऐसी मैं आशा रखता हूँ। लेकिन मान लीजिये, वैसी प्रेरणा किसी को भी नहीं हुई और सर्वोदय-समाज हवा में ही रह गया, तब भी यह अव्यक्त कल्पना विश्व कल्याण करेगी। इसके विपरीत सत्यनिष्ठा-विहीन बहुत बड़ी संस्था किसी समाज में शामिल हुई तो भी विश्व-कल्याण की दृष्टि से उसका तनिक भी उपयोग नहीं होगा।

– श्री विनोबा भावे जी

❖ ❖ ❖

परम पूज्य डॉक्टर श्री विश्वामित्र जी महाराज जी के मुखारविन्द से (1805)

श्री भक्ति प्रकाश भाग (803)

WHO AM I (मैं कौन हूँ - आत्मबोध) याज्ञवल्क्य का आत्मदर्शन - भाग-7

यही एक ढंग है देवियो सज्जनो आत्मसाक्षात्कार का। यह जितने भी साधन हैं, चाहे अखण्ड राम नाम स्मरण है, चाहे कुछ भी है, प्राणायाम करता है, योगाभ्यास करता है, कर्मयोग करता है, भक्तियोग करता है, ज्ञान योग करता है, जितनी भी साधनायें हैं, सब का एक ही लक्ष्य है अपने मन को मौन, स्थिर, शान्त करना। जब मन ऐसा हो जाता है, उसी को आत्मा कहा जाता है।

कैसी भेद की बात है, उसी को आत्मा कहा जाता है। मानो वह आत्मा जो हर वक्त सोच विचार में डूबी रहती है, उसे मन कहते हैं। जिसकी सोच विचार सारी समाप्त हो जाती है, जिसका मन निश्चल हो जाता है, फिजूल की उधेड़बुन खत्म हो जाती है जिसकी, शान्त हो जाता है, जो चंचल नहीं रहता, अचंचल हो जाता है, जो अस्थिर नहीं रहता, स्थिर हो जाता है, उस मन को मन नहीं कहा जाता, उसे आत्मा कहा जाता है।

मानो मन नाम की कोई चीज अन्दर है ही नहीं। यह आत्मा ही है, जो मनन करता है तो मन बन जाता है, चिन्तन करता है तो चित्त बन जाता है। मानो इस आत्मा के अतिरिक्त और इस देह में कुछ है ही नहीं। वह देह है, या फिर आत्मा है बस।

वह परम ब्रह्म परमात्मा ज्योति रूप में, आत्मिक रूप में हमारे भीतर विराजमान है। वत्स, वह ज्योति पांच तत्वों से ढकी हुई है। उन तत्वों को, उन परतों को आदमी जब एक-एक करके तोड़ता जाता है, तब ज्योति के दर्शन होते हैं। ज्योति सदा जगमगाती रहती है। उसमें तेल, घी, बाती, इत्यादि डालने की आवश्यकता नहीं। स्वयं ज्योतिर्मयी है वह ज्योति। आत्मिक ज्योति, स्वयं ज्योतिर्माण है। उसको किसी बाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। उसे मोमबत्ती की आवश्यकता नहीं, दीपक की आवश्यकता नहीं, लालटेन की आवश्यकता नहीं, सूर्य की आवश्यकता नहीं, चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं, सितारों की आवश्यकता नहीं। उसे बाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। वह स्वतः प्रकाश है। वह अपने आप में ही जगमगाने

वाली ज्योति है। ना घी चाहिए, ना तेल, ना बाती चाहिए। वह हर वक्त जगमगाती है। हाँ, पाँच तत्वों से ढकी हुई है, cover है। ऐसे ही मानियेगा जैसे एक बल्ब है। उस बल्ब के ऊपर एक घड़ा बाँध दिया जाये अच्छी तरह से, तो लाइट तो जल रही है लेकिन उस घड़े में से कुछ दिखाई नहीं दे रहा आपको। मानो अंधकार ही अंधकार हो गया है।

सबसे पहली layer बाहर से शुरु करते हैं, सबसे पहली layer पृथ्वी तत्व की layer है, इससे लोभ की उत्पत्ति होती है।

सन्त महात्मा बड़े सरल ढंग से हम सब को समझाते हैं, वह ज्योति किन तत्वों से ढकी हुई है। सब से बाहर बड़ी मोटी परत है, यह बड़ी मोटी layer है। जैसे आपको घड़े का उदाहरण दिया है, घड़ा ऊपर से बाँध दिया जाये, अन्दर जितनी मर्ज़ी रोशनी होगी, बाहर निकल नहीं सकती। किसी भी ढंग से नहीं निकल सकती। पहली layer, बाहर की layer, बड़ी मोटी layer है। लोभ की layer है। हम लोभ के बारे में चर्चा नहीं करेंगे। आप जानते हो इससे अन्दर की layer, दूसरी layer जल तत्व की है। इससे मोह की उत्पत्ति होती है। एक ही से मोह हो सकेगा मेरी माताओं सज्जनो! सन्तों महात्माओं के टोटके बहुत याद रखने योग्य। या संसार से, या परमात्मा से।

Very clear. जब तक संसार के प्रति मोह बना रहेगा, तब तक परमात्मा के साथ मोह नहीं हो पायेगा। Be sure about it.

दूसरी, तीसरी हम बाहर से अन्दर आ रहे हैं। तीसरी layer, पहली पृथ्वी तत्व, दूसरा जल तत्व। तीसरी layer अग्नि तत्व की है। इससे क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोधी स्वभाव वाला व्यक्ति कभी अपने आपको जान नहीं सकेगा, कभी परमात्मा के समीप तक नहीं पहुँच सकेगा। क्रोध करने वाले व्यक्ति से परमात्मा भी घबराता है। इसे दूर ही रखो। इससे दूर ही रहना चाहिए, इसे मेरे पास नहीं फटकना चाहिए। क्यों?

मैं मौन हूँ, मैं शान्त हूँ, मैं हर वक्त आनन्दित हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरे आनन्द एवं मेरी शान्ति में कोई खलल आकर मचाये, और क्रोधी हर एक के जीवन में, अपने जीवन में भी और दूसरों के जीवन में भी खलल ही खलल पैदा करने वाला व्यक्ति हुआ करता है।

चौथी परत वायु तत्व। इससे काम की उत्पत्ति होती है। चार layer हो गई।

अन्तिम परत सन्त महात्मा कहते हैं बहुत बारीक है। बिल्कुल ज्योति के साथ लगभग चिपकी हुई, जुड़ी हुई, बहुत पतली, आकाश तत्व। इससे अहंकार की उत्पत्ति होती है। यह सब कुछ खत्म हो जाये, यदि वह जो साथ जुड़ी हुई बड़ी बारीक layer है, वह बनी रहती है, तो भी आत्मज्योति जो है, वह प्रकट नहीं होती।

तो देवियो सज्जनो साधना का लक्ष्य हुआ अपने आप को निर्विचार करना, निर्विचार तो बाद की बात है, अपने आप को निर्विकार करना। निर्विकार हो जाओगे तो अपने आप निर्विचार हो जाओगे। तो लक्ष्य क्या हुआ साधना का? अपने आपको निर्विकार करना। इन विकारों को एक-एक करके छोड़ते जाना ही साधना का लक्ष्य है।

यही साधना की प्रगति है।

कैसे जानोगे कौन सा विकार बाकी रह गया है, कौन से छूट गये हैं।

इनको देखते रहना, निहारते रहना इनको। छोड़ते जाना ही साधना में प्रगति के चिन्ह हैं। तो यहीं समाप्त करने की इजाजत दीजियेगा इस प्रसंग को। धन्यवाद!

❖ ❖ ❖

विनम्रता : एक उपादेय गुण

(‘आनन्द’ पत्रिका से उद्धृत)

“तरु की झुकी डालियों से निज, सीखो शीश झुकाना।”

एक विनम्र व्यक्ति संसार का भूषण है। अपने में फूला न समाने वाला अत्यधिक उद्दण्ड पुरुष जीवन में कभी अड़चनों से बचकर नहीं रह सकेगा। यह जान लो कि तुम्हें अपने को शून्य में विलीन कर देना होगा। एक धूलिकण के तुल्य अपनी सत्ता को आँकने वाला व्यक्ति यद्यपि अपने लिये तो उतना ही है, समझ लो कि वही संसार का शिरमौर होने के योग्य है। ‘अधजल गगरी’ छलकती है। यर्थात् विद्या कदापि अकड़ कर चलने की सीख नहीं सिखाती, अपितु संसृति के परम्परागत शिकंजे को छिन्न-भिन्न कर जीवन के मार्ग को प्रशस्त बनाने का आदेश देती है। संघर्ष के शूल उसके लिये फूल हो जाते हैं जो स्वभाव से नम्र है। नियति की प्रतिकूलतायें अपने आप उबल कर शान्त हो जाती हैं, उसके लिये जो सहिष्णु है। विनम्रता – कितना सुन्दर शब्द है यह! झुक जाओ, अपने से छोटे के चरणों में भी। क्यों नहीं? तुम जिस सत्य के चित्र हो, क्या वह भी उसी का चित्र नहीं है? किसी को अपनी निजता से न्यूनता मानना उस पर एक अभियोग है। अपने से छोटों के मन मन्दिर में बैठने वाला भगवान् क्या तुम्हारे आराध्य से छोटा-बड़ा है।

पुष्पों और फलों के भार से जैसे शाखायें झुक पड़ती हैं, सलिल के अत्याधिक्य से जैसे अपनी उच्छृङ्खलता को छोड़ सागर गम्भीर हो जाता है, परिशान्त हो जाता है, वैसे ही दैवी गुणों के अभ्यागमन से मनुष्य का छोटापन शनैः-शनैः दूर होकर शान्त और गम्भीरता में परिणत हो जाता है। अभिमान क्यों? और किसका? रूप या यौन का? अरे, ये तो आज है, कल अदृश्य हो जाने वाला माया की केलि का क्रम है। यश या कंचन का? अरे, इस दामिनी की दमक में तो व्यर्थ ही वस्तु का भ्रम है। फिर किसका? अपनेपन का? जीवन का? सो यह जीवन तो प्रथम प्रश्वास से चरम निश्वास तक की अनुभूतियों की अनवरति में कोश एक भ्रम है। तब किसका? किसी का नहीं। अपने को शून्य में विलीन हो जाने दो। अपने को लघुता में लवलीन हो जाने दो। अपने को बड़ा समझना छोड़ दो वहीं से, बेशक वहीं से तुम्हारी प्रगति उस ओर अभिप्रेरित हो चलेगी, जहाँ से प्रत्यावर्तन नहीं होता। यह सच बात है।

मैं यन्त्र हूँ। तुम यन्त्री। शिवोऽहम् नहीं। सोऽहम् नहीं। बस दासोऽहम्, यही अभीष्ट है भक्त हृदय को। वह अणु-अणु में इष्ट की आभा का परिदर्शन करता है, और संसार को अप्रिय नहीं बताता। क्योंकि संसार है, संसरण है, जन्म-मरण का चक्र है. परिपीड़न है – इसीलिये वह अपने इष्ट का विस्मरण नहीं कर पाता – इसीलिये वह नर रूप नारायण के समक्ष जाकर झुकने का अवसर पाता है। तभी तो उसकी मनसा अदम्य रहती है, सेवक बनने की, विनम्र सेवक बनने की!! चन्द रोज की दुनियाँ में किसी से तकरार करके – मनमुटाव करके – क्या लेंगे हम। इसीलिये विनीत बनना चाहिए। अपने को जिस दिन ईश्वरार्पण कर देता है मानव, उसका अहंकार उसी दिन मिट जाता है। क्योंकि ईश्वर अहंकार को खाने वाला है। तब से वह हरिजन किसी पर रुआब नहीं जतायेगा क्योंकि वह अपने को तृणवत समझने लग गया है। हमारी किसी से कलह हो जाती है और हमारी अपेक्षा उसका कसूर अधिक है, फिर भी हमें ही चाहिए कि

जाकर हम उसे प्रणिपात करें, उससे क्षमायाचना करें, एवं मिल-जुलकर रहना आरम्भ कर दें। ईसा मसीह ने अपने शिष्यों के चरण धो लिये थे। अहंकार नहीं था उनमें। गरिमा का विस्मरण ही विनम्रता है। हम जिन्हें महापुरुष कहते हैं, जिनमें कुछ विशेषता देखते हैं, वे महानुभाव अपने को अतिनिकृष्ट समझते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वा-छिद्रनवेषण में ही तत्पर रहने की बान ले ली है। एक महात्मा जी के पास हम लोग जाते थे, तो वे झट पहले-पहल हमारा चरण छू लेते। हम सदा चेष्टा करते कि पहले हमें ही उनके चरणों के स्पर्श का सौभाग्य मिले, पर ऐसा होता न था। वे इतने बड़े महात्मा हम तुच्छों के पैर पकड़ लेते, बस जाते ही, फिर क्या किया जाये? सचमुच अपने से छोटों को पहिले ही प्रणाम कर लेना, यह विनम्रता की पराकाष्ठा है! बात भी ठीक है। हमारी हस्ती क्या है आखिर? असंख्य मानव-समुदाय रूप परिपूर्ण विश्व-सागर में हम एक छोटी-सी लहर के अतिरिक्त क्या हैं? असंख्य जीव-योनी-समुदाय रूपी विश्व के आकाश मण्डल के मध्य हमारी एकाकी सत्ता एक छुद्र तारिका से बढ़कर और क्या है? फिर अपने में मद क्यों होता है? अपने को बड़ा समझ लेने की लत कैसे पड़ जाती है? इसलिये नित्य निरन्तर विचार करना होगा, सभी सुलझन मिल सकेगी और विनम्रता आयेगी।

– स्वामी श्री रामानन्द सरस्वती

❖ ❖ ❖

व्यवहार का स्वप्न सूत्र है। Yield in things which do not matter. जो जीवन के सार से, जीवन के मूल्यों से सम्बन्ध रखती है वहाँ तो झुकना नहीं होगा। परन्तु और जगह खुशी-खुशी से झुकना होगा। परन्तु जहाँ नहीं झुकना वहाँ भी शील का परित्याग नहीं होना चाहिए, विनय का अभाव न होना चाहिए। मुझे तो तुलसी रामायण का अयोध्याकाण्ड इस विषय में आदर्श लगता है। वैसे यह सामान्य नियम है कि हमारी विशुद्ध प्रीति, सेवा, मधुरता तथा आत्म-त्याग की भावना दूसरों को मोह सकती है। और हमारे लिये तो यह सभी साधना होगी ही।

– रामानन्द

कड़वा सच : अहंकार नहीं, प्रेम!

हर एक इंसान समझता है कि जो वह कर रहा है, वह सबसे अच्छा है। वह जैसी ज़िदगी जी रहा है, उससे अच्छा कुछ नहीं हो सकता। अनेक बार प्रभु की खोज में लगे लोगों के अन्दर भी घमण्ड आ जाता है। कई लोग सोचने लगते हैं कि उन्होंने बहुत दान-पुण्य किया है। बहुत से तीर्थ स्थानों पर गये हैं, बाकायदा अपने धर्म स्थान पर जाते रहे हैं और हम दूसरों का खयाल करते हैं। ऐसे में हम यह भूल जाते हैं कि ज़िदगी में सद्‌गुणों की मौजूदगी बहुत ज़रूरी है। ऐसी ज़िदगी जो सेवाभाव से भरपूर हो, ऐसी ज़िदगी जिसमें हम नम्रता से हर एक से पेश आयें, ऐसी ज़िदगी जिसमें हमारे अन्दर सबके लिए प्रेम हो। इंसान यह भूल जाता है कि जब उसके अन्दर अहं (घमण्ड) पैदा हो जाता है, तो फिर उसके कदम स्वत: ही उसे प्रभु से दूर ले जाते हैं।

हमें सभी सद्‌गुणों को अपने अन्दर ढालना है। यह नहीं कि कुछ सद्‌गुण अपना लिये और कुछ नहीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये सब हमें डंस लेते हैं। अगर कुछ चीजों को काबू में किया और एक हमारे काबू से बाहर रही, तो हम अपनी मंजिल तक हरगिज़ नहीं पहुँच सकते। महापुरुष बार-बार यही समझाते हैं कि हमें ऐसी ज़िदगी जीनी चाहिए, जो सद्‌गुणों से भरपूर हो। कई बार हम सोचते हैं कि हम प्रभु की ओर बढ़ रहे हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसे एक कथा से समझाया जा सकता है।

एक इंसान था जिसका नाम था बाबूराम। उसमें प्रभु को पाने की बड़ी इच्छा थी। इसके लिये वह अपने धर्मानुसार नियम से पूजा-पाठ किया करता था। जैसे-जैसे उसने धर्म को समझने की कोशिश की, तो उसे लगा कि उसे तीर्थ यात्रा पर जाना चाहिए। वह अपने धर्म के हर एक तीर्थ स्थान पर गया। एक-दो बार नहीं, साठ बार गया। चूँकि वह बहुत बार तीर्थ यात्रा करके आया तो उसने सोचा कि मुझे अपने नाम के साथ तीर्थ शब्द जोड़ लेना चाहिए। उसने अपना नाम तीर्थ बाबूराम रख लिया। जब भी कोई उससे मिलता और पूछता कि तुम्हारा नाम क्या है, तो वह कहता था कि मैं तीर्थ बाबूराम हूँ और मैं साठ बार सभी तीर्थों पर होकर आया हूँ। वह अपने तरीके से प्रभु की ओर ध्यान टिकाने की भी कोशिश करता था और जो भी उसे ठीक लगता, वह करता रहा।

एक दिन वह सोया हुआ था। उसे एक स्वप्न आया कि उसकी मौत हो गई है। जब धर्मराज के सामने उसकी पेशी हुई तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम्हें पहले अच्छे कर्मों का हिसाब करना है कि बुरे कर्मों का? उसने कहा कि मैं पहले अच्छे कर्मों का हिसाब करना चाहूँगा, क्योंकि मैं साठ बार तीर्थ यात्रा करके आया हूँ। इस पर धर्मराज ने कहा कि तुम्हें इसका फल मिलना चाहिए। लेकिन तीर्थ स्थानों पर जाकर तुम्हारे अन्दर घमण्ड आ गया है। इतना घमण्ड कि तुमने अपने नाम के आगे भी तीर्थ लगा लिया है ताकि लोग समझें कि तुम तीर्थ स्थानों पर होकर आये हो।

इसलिये जितना भी फल मिलना था, वह शून्य हो गया है। जितना ज्यादा तुमने लोगों को यह बताया है कि तुम फलां-फलां तीर्थ स्थानों पर गये, उससे जो भी पुण्य तुमने कमाया था, वह खत्म हो गया। यह सुनकर उसके होश उड़ गये। उसे लगा कि उसने सबसे अच्छा काम तो ज़िदगी में यही किया था कि वह तीर्थ यात्रा पर जाता रहा है। तब एकदम से उसकी नींद खुल गई। उठा तो शुक्र मनाया कि अभी उसकी मौत नहीं हुई है। फिर उसके बाद उसमें पूरी ज़िदगी अपने अहंकार को काबू में रखा।

महापुरुषों का मत है कि हम ज़िदगी ऐसी जीयें, जो नम्रता से भरपूर हो! अगर अहंकार को काबू में न रखा जाये, तो इंसान सच्चाई की ज़िदगी नहीं जी पाता। जैसे ही इंसान में घमण्ड आता है, वैसे ही आदमी बढ़-चढ़कर बातें करनी शुरू कर देता है। ऐसी स्थिति में वह खुद के निकट ही नहीं रहता तब प्रभु के निकट भला कैसे पहुँच सकेगा।

नीलम दूबे

सात दिव्य शक्तियाँ

श्रीकृष्ण ने गीता के विभूति-योग में सात शक्तियों की चर्चा की है। ये शक्तियाँ हैं – कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा। कहा जाता है कि जो व्यक्ति इन्हें हासिल कर लेता है, वह पूर्णता के रास्ते पर आगे बढ़ जाता है। इन सातों शक्तियों में कीर्ति का ज़िक्र सबसे पहले आया है। 'कीर्ति' का एक अर्थ है अच्छी खासियत वाला। कीर्ति से समाज, विचार और लोक व्यवहार में अच्छा माहौल बनता है। इसके बाद 'श्री' एक अन्य शक्ति का रूप है। श्री के तीन मायने हैं – कान्ति, लक्ष्मी और शोभा। जिस व्यक्ति में ये तीनों न हों वह 'श्री' का हकदार नहीं होता है। वेदों और श्रीमद्भगवद्गीता में श्री के तमाम अर्थ दिये गये हैं, जिनमें स्वच्छता, बुद्धि की चमक और परिश्रम से कमाया धन शामिल है। तीसरी शक्ति 'वाणी' है। वाणी से ही इंसान की असली पहचान होती है। जिसकी वाणी में दम है, उसे दूसरी शक्तियों की ज़रूरत कम पड़ती है । **यद् यद् वदति तत्तदेव भवति**, यानी 'जिसकी वाणी, सिद्ध (प्रखर) है, वह हर किसी को काबू में कर सकता है। मन, आत्मा, बुद्धि, ज्ञान और मौन की वाणी पर जिसका अधिकार हो जाता है, वह सिद्ध साधक और महापुरुष बन जाता है। इसलिये वाणी की क्रिया पर बराबर गौर करना चाहिए।

स्मृति सफलता और सुख हासिल करने की एक उत्तम शक्ति है। हम जो भी कामनायें करते हैं, उनमें एक संकल्प होता है। संकल्प मन के ज़रिये होता है। इसलिए 'मन' को बलवान बनाने के लिये बार-बार अभ्यास करते रहना चाहिए। हम जो भी कर्म करते हैं, उसका संस्कार हमारे चित्त पर पड़ता है। ये संस्कार अच्छे-बुरे दिनों में होते हैं। ये संस्कार हमारे मन में दर्ज़ होते रहते हैं, इसे ही स्मृति कहा जाता है। अच्छी स्मृतियों से मन में शान्ति, सन्तोष, श्री ज्ञान और अच्छे विचार पैदा होते हैं।

एक अन्य शक्ति है 'मेधा'। मेधा शक्ति जीवन में जीवन्तता पैदा करती है। ज्ञान, विज्ञान की प्रक्रिया को सहज रूप में बढ़ाना और उसका पूरा आकलन करना मेधा कहलाता है। मेधा का एक अर्थ त्याग और बलिदान भी होता है। जिस इंसान में त्याग और बलिदान की शक्ति होती है, वह मेधावी है। भोग, वासना और विकारों से छुटकारा मेधा के ज़रिये ही मिल सकता है। शक्ति-धृति के दो मायने होते हैं – धीरज और उत्साह। यानी कर्म-चेतना और कर्म-प्रेरणा। जिस इंसान में ये दोनों बातें होती हैं, वह कभी असफल नहीं हो सकता है। मनुस्मृति में महर्षि मनु ने धर्म के जो दस लक्षण बताये हैं, उनमें धृति पहला है। कर्म-चेतना और कर्म-प्रेरणा जिसमें है, उसमें धर्म के बाकी लक्षण आ जाते हैं। देखा गया है कि बहुत से लोगों में उत्साह तो खूब होता है, लेकिन धीरज बिलकुल नहीं होता। इससे उत्साह में हासिल सफलता टिक नहीं पाती।

इसलिए वैदिक ऋषियों ने कहा – हे परमात्मा! हमें सम्पूर्ण धृति प्रदान करें। **'मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः योगेन'**, यानी मन, प्राण और इन्द्रियों की जो क्रियाएं चलती हैं, उन सबको धारण करने वाली शक्ति धृति है। इसलिये जब धृति मजबूत होगी, तो हमारे अन्दर योगवृत्ति बढ़ेगी। इससे प्राणशक्ति भी बढ़ेगी। 'क्षमा' मनुष्यता और देवत्व की अमोघ शक्ति है। क्षमा का गुण ऐसा है, जो तमाम बुराइयों को खत्म कर डालता है।

महाभारत में वेदव्यास ने क्षमा को मानव का अमूल्य गहना बताया है। यह परम यज्ञ है। अद्भुत ज्ञान है और यही तप है। क्षमा की तुलना पृथ्वी से की गई है। जिस तरह से पृथ्वी हर किसी का भार सहन करते हुए भी कभी किसी से कोई शिकायत नहीं करती, ऐसा स्वभाव क्षमाशील व्यक्ति का होना चाहिए। इस तरह सात शक्तियाँ हमारे जीवन का अहम हिस्सा हैं। अथर्ववेद में भी सात ऐसी शक्तियों की चर्चा की गई है, जिन्हें हासिल करके मानव अपने जीवन को धन्य कर सकता है। ये सात शक्तियाँ हैं – आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण और ब्रह्मवर्चस्। कुरान में भी सात शक्तियों का ज़िक्र मिलता है। बाइबल में भी सात ऊर्जाओं का वर्णन है। कह सकते हैं कि सप्त शक्तियों की चर्चा दुनिया के हर मज़हब की किताब में किसी न किसी रूप में की गई है।

मनन करने योग्य
भगवत् कथा - श्रवण का माहात्म्य

सत्युग की बात है। गंगाजी से दो कोस दक्षिण हटकर सत्यव्रत नामक ग्राम में एक महातपस्वी बृहत्तपा नाम के ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने दीर्घतमा नामक एक जन्मान्ध महर्षि को लगातार सौ वर्ष तक भगवान् की कथा सुनायी थी। उसी गाँव में एक और ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था पुण्यधामा। जब बृहत्तपा की कथा होने लगती, तब पुण्यधामा जी भी वहाँ अवश्य सुनने पहुँचते। ये पुण्यधामा जी इतने कथालोलुप थे कि सौ वर्ष तक भगवत् कथा ही सुनते रह गये। यद्यपि गंगाजी वहाँ से दो कोस पर ही थीं, तथापि ये कथालोलुप पुण्यधामा जी सौ वर्ष तक वहाँ स्नान करने भी नहीं गये। संक्षेप में पुण्यधामा जी की दो ही गतियाँ थीं – सदा विष्णु-कथा का श्रवण और अतिथि-महात्माओं की सेवा।

एक दिन पुण्यधामा जी जब कथा सुनकर लौटे, उसी समय उनके यहाँ दो महात्मा – धृतव्रत और ज्ञानसिन्धु तीर्थयात्रा के प्रसंग में पधारे। पुण्यधामा जी ने उन्हें देखा तो उनके चरणों पर गिर पड़े, मधुपर्कादि से उनकी पूजा की और अपने भाग्य की सराहना करने लगे; तत्पश्चात् उन्हें भोजन कराकर उनके चरण दबाने लगे। बातचीत के प्रसंग में दोनों महात्माओं ने पुण्यधामा जी से गंगाजी की वहाँ से दूरी पूछी। पुण्यधामा जी ने बतलाया – 'महाराज! मैं तो सौ वर्ष से कथा श्रवण में लगा रहा हूँ। मुझे वहाँ स्वयं जाने का अवसर नहीं आया, अतएव सुनिश्चित रूप से तो कुछ बतला नहीं सकता। तथापि कई बार लोगों के मुँह से यह सुन चुका हूँ कि वे यहाँ से दो कोस उत्तर पड़ती हैं।'

इतना सुनना था कि दोनों मुनि बिगड़ पड़े। वे परस्पर कहने लगे – 'अहो, इसके समान दूसरा पापी कौन है, जिसने कभी गंगा की सेवा नहीं की। भला गंगा के समीप होने पर भी जो उनकी सेवा नहीं करता, वह आत्म हत्यारा तो सर्वकर्म से बहिष्कृत करने योग्य है। आज दुर्भाग्यवशात् अनजाने ही हम लोगों को इसके संग से महान् पाप लग गया।' यों कहकर वे तत्काल वहाँ से उठकर चल दिये और प्रातःकाल बड़ी उत्कण्ठा से गंगा तट पर पहुँचे। दूर से ही नमस्कार करते हुए वे स्नानार्थ समीप पहुँचे तो उन्हें कहीं जल नहीं दीखा। वे गंगासागर से लेकर हिमालय तक गंगा तट पर घूमते रहे, पर उन्हें नाम मात्र को भी जल नहीं मिला। अन्त में काशी लौटकर वे गंगाजी की प्रार्थना करने लगे – 'हे देवि! देवशिरोमणि महादेवजी ने आपको सिर पर धारण कर रखा है। आप भगवान् विष्णु के चरण-नख से निर्गत हुई हैं। आप समस्त लोक को पवित्र करने वाली हैं। जगद्धात्री! माता! यदि हमसे कोई अपराध बन ही गया हो तो माँ! आपको अब क्षमा कर देना चाहिये।

दोनों ने इस प्रकार स्तुति की तो दयामयी भगवती गंगा वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गयीं। वे मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोलीं – 'तुमने महाबुद्धिमान् पुण्यधामा की निन्दा की है, यह बहुत बुरी बात हुई है। मैं स्वयं उस महाभाग की चरणरेणु की प्रतीक्षा में रात-दिन बैठी रहती हूँ। जहाँ भगवान् की कथा होती है और भगवदाश्रित साधुजन रहते हैं, वहाँ सारे तीर्थ रहते हैं। विष्णु कथा का श्रवण-कीर्तन ही 'विधि' है, उसे भूलना ही 'निषेध' है। करोड़ों ब्रह्म हत्याओं का पाप तो किसी प्रकार शान्त भी किया जा सकता है, पर भगवद् भक्तों की निन्दा का पाप अरब-खरब कल्पों में भी नष्ट नहीं होता। भगवान् सहस्रों अपराधों को भूल सकते हैं, पर अपने भक्तों के अपमान को वे कभी नहीं क्षमा कर सकते। अतएव तुम लोग उस पुण्यधामा को प्रसन्न करो! जब तक ऐसा नहीं करते, मैं प्रसन्न नहीं होती और तुम्हें जल नहीं दीखता।

भगवती गंगा के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर वे दोनों मुनि सत्यव्रत ग्राम में गये और पुण्यधामा से प्रार्थना करने लगे। पुण्यधामा उन्हें लेकर अपने गुरु के पास गये। उन्होंने उन दोनों को भी दो वर्ष तक भगवत् कथा सुनायी। तत्पश्चात् वे पाँचों गंगातट पर आये। भगवती गंगा ने उठकर बृहत्तपा, दीर्घतमा और पुण्यधामा की पूजा की। साथ में आये हुए दोनों मुनियों ने भी देखा कि अब गंगाजी जलपूर्ण थीं। अब उन पाँचों ने वहाँ श्रद्धापूर्वक अवगाहन किया तथा परासिद्धि प्राप्त की। **(वायुपुराण)**

05.12.25 से 15.02.26 तक के 2100/- से ऊपर दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं। भुगतान को और सुविधाजनक बनाने हेतु बैंक ऑफ़ इंडिया का QR Code भी दिया जा रहा है।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
BANK OF INDIA,
Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
HDFC BANK,
Bhoopatwala, Saptrishi Chungi, Haridwar
A/c No.: 50100537193693
I.F.S. Code: HDFC0005481

साधना धाम का PAN नम्बर AAKAS8917M है।

जो दानदाता उपरोक्त बैंक खातों में से किसी में भी सीधे जमा करते हैं वे कृपया अपना नाम, पता, आधार कार्ड व PAN CARD का PDF निम्नलिखित नम्बरों में से किसी एक पर अवश्य प्रेषित करें –

1. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री - 9690187900 **2. श्री रवि कान्त भण्डारी - 9872574514**

– रवि कान्त भण्डारी, प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 09872574514, 08273494285

1. गिरीश मोहन, हरिद्वार	1,21,000	21. अनिल पोरवाल, कानपुर	5,100
2. दिनेश चन्द्र अग्रवाल, बीसलपुर	1,02,100	22. राधा मिश्रा, कानपुर	5,100
3. एस.एम. ट्रेडर्स, कानपुर	1,00,000	23. सुषमा शर्मा, लखनऊ	5,100
4. सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	1,00,000	24. सुभाष चन्द्र ग्रोवर, दिल्ली	5,100
5. रैना गोयल-सुमित गोयल, मेरठ	1,00,000	25. समीर पाण्डे-साम्भवी, गाजियाबाद	5,100
6. विजय बहल, मेरठ	98,000	26. रवि कान्त भण्डारी, लुधियाना	5,000
7. कान्ता अमर, जम्मू	51,000	27. रवि कान्त शुक्ला, देहरादून	5,000
8. इज्जत राय उप्पल, लुधियाना	22,000	28. राधा मिश्रा / शान्ति माता जी, कानपुर	5,000
9. अजय कुमार अग्रवाल, बरेली	21,000	29. राजेन्द्र भांबरी, नोएडा	5,000
10. देशराज एंड संस, चण्डीगढ़	21,000	30. नीता सहगल, नई दिल्ली	4,200
11. जेनी मेहरोत्रा, गुरुग्राम	17,000	31. आनन्द कुमार अग्निहोत्री, लखनऊ	4,004
12. हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	15,000	32. ज्ञानवती शुक्ला, गाजियाबाद	4,000
13. शान्ति गृह उद्योग, अहमदाबाद	11,000	33. अरुणा	3,100
14. सी.बी. गुप्ता, फरीदाबाद	11,000	34. रुचि मिश्रा, बरेली	3,100
15. सचिन अग्रवाल, फरीदाबाद	11,000	35. मधु खुल्लर, गुरुग्राम	3,100
16. बर्थडे कलेक्शन, हरिद्वार	10,470	36. भण्डारी परिवार, अमृतसर	3,000
17. कमला, कानपुर	10,000	37. अभिषेक, हरिद्वार	2,500
18. डॉ. आकांक्षा अग्रवाल, मेरठ	10,000	38. मनोज गुप्ता-साधना गुप्ता, बीसलपुर	2,500
19. मिथलेश पोरवाल, कानपुर	7,000	39. पुष्कर पाण्डे	2,100
20. सूरज भान सक्सेना, कानपुर	6,300	40. प्रिया	2,100

(05.12.2025 से 15.02.2026 तक के दानदाताओं की सूची पिछले पृष्ठ से ...)

41. प्रतीक दीक्षित, नोएडा	2,100	52. कान्ति सिंह, कानपुर	2,100
42. चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	2,100	53. निर्मल जोशी, हल्द्वानी	2,100
43. राखी-अनिरुद्ध अग्निहोत्री, रुड़की	2,100	54. मनोज कुमार गुप्ता, बीसलपुर	2,100
44. प्रमोद मिश्रा, अहमदाबाद	2,100	55. नीलम मल्होत्रा, गुरुग्राम	2,100
45. अनु घई, दिल्ली	2,100	56. नितेश मोहन अग्रवाल, बरेली	2,100
46. जय प्रकाश डंगवाल, देहरादून	2,100	57. विनोद भण्डारी, नोएडा	2,100
47. मोहित मित्तल, बीसलपुर	2,100	58. वीजीए मिश्रा सुपुत्री विकास मिश्रा, बरेली	2,100
48. पूर्णिमा मिश्रा, गाजियाबाद	2,100	59. शशि भूषण चावला, हिसार	2,100
49. दीपक शर्मा, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)	2,100	60. सरोजिनी गंगवानी, कानपुर	2,100
50. शिव शंकर अग्रहरी, लखनऊ	2,100	61. गुप्तदान	2,32,651
51. अनीता सहगल, दिल्ली	2,100		

शोक समाचार

कानपुर रामबाग सत्संग की उच्च कोटि की, पूज्य गुरुदेव को पूर्ण समर्पित वरिष्ठ साधिका श्रीमती सरोजिनी गंगवानी जी का 85 वर्ष की आयु में 12 जनवरी 2026 की सायं को देहावसान हो गया है पूज्य गुरुदेव से विनती है कि इस पवित्र आत्मा को अपने चरण कमल में स्थान प्रदान करें तथा परिवार के सभी लोगों को धैर्य और शान्ति प्रदान करें।

दिगोली शिविर-2026

दिगोली तपस्थली पर साधना शिविर का कार्यक्रम इस प्रकार होगा:-

पहुँचना	: 12 मार्च 2026		
शिविर प्रारम्भ	: 13 मार्च 2026	:	4 बजे सायं
भण्डारा	: 15 मार्च 2026	:	11 बजे प्रातः से
पूर्ति	: 16 मार्च 2026	:	8 बजे प्रातः

भाग लेने वाले साधक गण कृपया अध्यक्ष जी को यथाशीघ्र सूचित करें।

श्री गुरुदेव निर्वाण दिवस साधना शिविर-2026

14 अप्रैल 2026 को पूज्य गुरुदेव को श्रद्धांजलि स्वरूप अखण्ड जाप होगा। 15 अप्रैल को प्रातः अखण्ड जाप की पूर्ति के समय गंगा के पावन तट पर पूज्य गुरुदेव को श्रद्धा सुमन अर्पित किये जायेंगे। तत्पश्चात् मन्दिर में आकर साधकगण अपनी श्रद्धांजलि के भाव गुरुदेव के चरणों में प्रस्तुत करेंगे। 15 अप्रैल को भण्डारे के बाद विश्राम रहेगा। शिविर 16 अप्रैल को प्रारम्भ करके 21 अप्रैल की प्रातः को पूर्ति की जायेगी।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक 19 अप्रैल 2026 को कार्यालय में होगी। **20 अप्रैल को जनरल बॉडी की सभा रात्रि के समय धाम के प्रांगण में होगी।**

साधना शिविर में भाग लेने वाले साधक अपने आने की सूचना मैनेजर साधना-धाम को 15 दिन पूर्व देने की कृपा करें।

बाल-साधना शिविर-2026

शिविर स्थान : स्वामी रामानन्द साधना-धाम,
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

समय : 30 मई से 3 जून 2026 प्रातः तक

कुछ वर्षों से ग्रीष्मावकाश में बाल-साधना शिविर का आयोजन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य है बालकों का आध्यात्मिक, चारित्रिक एवं शारीरिक विकास करना। पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी की साधना पद्धति की सरल ढंग से जानकारी दी जायेगी एवं व्यावहारिक साधना के अन्तर्गत व्यावहारिक ज्ञान दिया जायेगा। शिविर में जाप का आवाहन, गीता पाठ, भजन एवं गोष्ठी का संचालन बालकों के द्वारा ही होगा अतः तैयारी करके आयें। प्रातः भ्रमण, खेल व योग के कार्यक्रम भी होंगे।

आवश्यक सामग्री : अपने पहनने के आवश्यक कपड़े, तौलिया, टूथपेस्ट व ब्रश, कंघा, साबुन, भ्रमण के लिये जूते, कापी, पैन एवं पेन्सिल।

बिस्तर एवं बर्तनों की व्यवस्था साधना-धाम की ओर से होगी।

कृपया अपने आने की सूचना 15 दिन पूर्व साधना-धाम में व्यवस्थापक महोदय को पत्र या फोन द्वारा अवश्य दें। (फोनः 01334-311821, मोबाइलः 08273494285)

प्रतियोगितायें

बच्चों को तीन ग्रुपों में बाँटा जाएगा।

1. पहला ग्रुप 7 वर्ष से 10 वर्ष तक के बच्चे – शिक्षाप्रद कहानियाँ।
2. दूसरा ग्रुप 11 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चे – सन्तों की कहानियाँ एवं संस्मरण।
3. तीसरा ग्रुप 15 वर्ष से 20 वर्ष के बालक व बालिकायें – दिये गये विषय पर सामूहिक चर्चा (Group Discussion)।

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1.	अध्यात्म विकास	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
2.	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	
3.	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	
4.	Evolutionary Outlook on Life	
5.	Evolutionary Spiritualism	
6.	जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
7.	गीता विमर्श	श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अध्याय 1-7 की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
8.	व्यावहारिक साधना	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये, (2) दम्पत्ति के लिये, (3) माता-पिता के प्रति का संकलन
9.	कैलाश-दर्शन	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन
10.	गीतोपनिषद	श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अध्याय 8-18 की स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या
11.	हमारी साधना	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
12.	हमारी उपासना	
13.	साधना और व्यवहार	
14.	अशान्ति में	
15.	मेरे विचार	
16.	As I Understand	
17.	My Pilgrimage to Kailash	
18.	Sex and Spirituality	जीवन-रहस्य (प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
19.	Our Worship	हमारी साधना
20.	Our Spiritual Sadhana Part-I	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)
21.	Our Spiritual Sadhana Part-II	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
22.	स्वामी रामानन्द – एक आध्यात्मिक यात्रा	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23.	पत्र-पीयूष	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन
24.	स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवं वैद्य श्री सत्यदेव
25.	स्वामी रामानन्द-वचनामृत	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन
26.	मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन
27.	पत्तियाँ और फूल	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन
28.	दैनिक आवाहन विधि	स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित – श्रीमती महेश प्रकाश
29.	Letters to Seekers	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन
30.	आत्मा की ओर	
31.	जीवन विकास – एक दृष्टि	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32.	विकासात्मक अध्यात्म	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33.	गुरु के प्रति निष्ठा	तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34.	माँ की विभूति – भक्ति रस (भाग 1 से 5)	अनाम साधिका
35.	श्रीराम भजन माला	श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
36.	माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	मीरा गुप्ता
37.	पत्र-पीयूष सार	पत्र-पीयूष का संग्रहीत संस्करण
38.	गीता पाठ	
39.	गृहस्थ और साधना	
40.	प्रभु दर्शन	
41.	प्रभु प्रसाद मिले तो	
42.	गीता प्रवेशिका – हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी में गीता का संग्रहीत संस्करण	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
43.	अध्यात्म विषयक लेख	
44.	वन्दना, स्तुति, प्रार्थना तथा वैदिक सामान्य ज्ञान	
45.	Gita Vimarsh	श्री कृष्ण गोयल द्वारा गीता विमर्श का English Translation